आर्य समाज 150 स्वर्णिम वर्ष मानव सेवा के 1875-2025

महर्षि दयानन्द सरस्वती

टंकारा समाचार

(श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट का मासिक पत्र)

मई 2025 वर्ष 29, अंक 05 ❑ दूरभाष (दिल्ली): 23360059, 23362110 (टंकारा): 02822-287756 ❑ विक्रमी सम्वत् 2082 ❑ कुल पृष्ठ 16

ई-मेल: tankarasamachar@gmail.com ❑ एक प्रति का मूल्य 20/-रुपये ❑ वार्षिक शुल्क 200 रुपये ❑ आजीवन 1000/-रूपये

सत्यार्थ प्रकाशानुसार विद्या और अविद्या

❑ **स्व. प्रो. (डॉ.) सुन्दरलाल कथूरिया, डी. लिट.**

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के नवम् समुल्लास में तो विद्या और अविद्या का विवेचन किया ही है, 'यजुर्वेद' के चालीसवें अध्याय के तीन मन्त्रों (मन्त्र संख्या 12, 13 और 140 का भाष्य करते हुए भी इसी गूढ़ एवं रहस्यात्मक विषय का विवेचन किया है। ऋषिवर दयानन्द ने विद्या-अविद्या के रहस्य को समझाने के लिए वेद एवं योगदर्शन का आधार ग्रहणकिया है तथा इस गहन विषय के सम्बन्ध में नवीन वेदान्तियों के मत का सतर्क खण्डन भी किया है।

नवम् समुल्लास के प्रारम्भ में स्वामी जी ने यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के चौदहवें मन्त्र को उद्धृत किया है। मन्त्र इस प्रकार है-

विद्यां चाविद्या च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥ (यजुर्वेद 40/14)

मन्त्रपाठ के उपरान्त यदि इसका अन्वय कर थोड़ी-बहुत संस्कृत जानने वाला भी प्रयास करे तो वह इसका यही अर्थ करेगा कि जो विद्या और अविद्या इन दोनों को साथ-साथ जानता है अर्थात् इन दोनों के वास्तविक रूप को साथ-साथ जानता है, वह अविद्या के द्वारा मृत्यु को तर कर विद्या से अमरता को प्राप्त करता है। यह मन्त्र रहस्यात्मक, गूढ़ और गहन-गंभीर है। सामान्यत: शब्दकोशों में विद्या का अर्थ 'ज्ञान' और अविद्या का अर्थ 'अज्ञान' मिलेगा, किन्तु ऋषिवर दयानन्द ने 'अविद्या' का अर्थ किया है। 'कर्मोपासना'। 'अविद्या' का यह अर्थ किसी भी शब्दकोश में नहीं मिलेगा। 'अविद्या' का यह अर्थ तो कोई मन्त्रदृष्टा ऋषि ही कर सकता है और 'अविद्या' का यह दार्शनिक अर्थ समाधिस्थ महर्षि दयानन्द सरस्वती ने किया है। स्वामी जी के शब्दों में, 'जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है, वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तर के विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है।' 'सत्यार्थ प्रकाश, नवम् समुल्लास, पृ. 166), स्पष्टत: ऋषिवर दयानन्द ने 'अविद्या' का अर्थ किया है 'कर्मोपासना' तथा 'विद्या' का अर्थ किया है 'यथार्थ ज्ञान'। साथ ही योग सूत्र के साक्ष्य पर 'अविद्या' और 'विद्या' को और अधिक स्पष्ट किया है, ताकि सामान्य साधकों की समझ में भी यह विषय अच्छी प्रकार से आ जाये।

यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के बारहवें मन्त्र में कहा गया है कि जो लोग अविद्या की उपासना करते हैं, वे अज्ञानरूप घोर अन्धकार में प्रविष्ट होते हैं तथा जो लोग विद्या में रत हैं, वे उन अज्ञानियों से भी अधिक अन्धकार में प्रविष्ट होते हैं। जहां यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के चौदहवें मन्त्र में विद्या से मोक्ष प्राप्ति की बात कही गई है, वहां इस मन्त्र में विद्या से घनघोर अन्धकार में प्रविष्ट होने की बात कही गई है- और यह स्थिति सामान्य पाठक/साधक को असमंजस में डाल सकती है, अत: इन दोनों मन्त्रों में आगत 'विद्या' शब्द के अर्थ-भेद को ठीक-ठीक हृदयंगम कर लेना अत्यावश्यक है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के बाइसवें मन्त्र में आये 'विद्या' शब्द का अर्थ करते हुए स्वामी जी ने लिखा है कि जो शब्द, अर्थ और इनके सम्बन्ध को तो जानतें है। किन्तु जो सत्यभाषण, पक्षपातरहित, न्यायाचरण के धर्म से रहित है। तथा अहमन्य हैं, ऐसे तथाकथित विद्वान् वस्तुत: अज्ञानी ही हैं और उनकी यह विद्या वस्तुत: अविद्या ही है। विद्या वास्तव में विद्या तब बनती है जब वह वैदिक आचरण से जुड़ जाये तथा विद्वान् व्यक्ति को आचारवान एवं विनम्र बना दे। आचारहीन व्यक्ति को कोरा शब्दार्थ ज्ञान वस्तुत: अविद्या ही है, क्योंकि न तो उससे आत्मा को जाना जा सकता है, न ब्रह्म को और न मोक्ष को ही प्राप्त किया जा सकता है। कहा भी है-**'आचारहीनं न पुनन्ति वेदा:'** तथा **'विद्या ददाति विनयम्'।** विनम्र सदाचारी तत्वज्ञानी ही मुक्ति-लाभ का अधिकारी हो सकता है।

'सत्यार्थ प्रकाश' के नवम् समुल्लास में अविद्या के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए स्वामी जी ने महर्षि पतंजलि के योगदर्शन के साधनपाद के 5वें सूत्र का उल्लेख किया है, जो अग्रस्थ है-

अनित्यानशुचिदु: खानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या॥

इस सूत्र का अर्थ है कि अनित्य को नित्य, अशुचि (अपवित्र) को शुचि (पवित्र), दु:ख को सुख और अनात्मा को आत्मा मानना-ये चार प्रकार का मिथ्याज्ञान 'अविद्या' है। अविद्या विद्या विरुद्ध ज्ञानान्तर है-विपरीत ज्ञान है। अविद्या के उक्त चार प्रकारों को स्पष्ट करने के

(शेष पृष्ठ 15 पर)

'टंकारा समाचार' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संयोग: एक अनबूझ पहेली

– पद्‌म्‌श्री डॉ. पूनम सूरी

प्रधान, डी.ए.वी. कॉलेज प्रबन्धकर्त्री समिति एवम् आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, ट्रस्ट प्रधान महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा (जन्मभूमि)

संयोग हमारे जीवन में बहुत बड़ी और महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। संयोग कैसे बनते हैं, कैसे घटित होते हैं, यह कोई दूसरा नहीं जानता। सम्भवत: यही कारण है कि वह संयोग कहलाते हैं। संयोग का शाब्दिक अर्थ ही है–'दो बातों का अचानक एक साथ होना।' उर्दू में इसे 'इत्तेफाक' कहते हैं। अंग्रेजी भाषा का 'कोइंसिडेंस' भी संयोग ही है। संयोग को ही 'संजोग' भी कह दिया जाता है। 'संयोग' अर्थात् अचानक ऐसा कुछ घट जाना, घटित हो जाना, जिसका कहीं दूर-दूर तक आशा और आभास भी न हो। संयोग हममें से हर एक के जीवन में घटते रहते हैं। चाहे हम उन्हें संयोग की संज्ञा दें या न दें। कई संयोग तो किसी चमत्कार से कम नहीं होते। ऐसा भी कहते हैं कि यदि कोई काम बनना या होना होता है तो कोई न कोई संयोग बन ही जाता है। अनेक ऐसी घटनाएं देखने, सुनने-पढ़ने में आती रहती हैं कि अच्छी-खासी बारात आई। स्वागत सत्कार हुआ, पर वर पक्ष की ओर से अचानक कोई नई बड़ी मांग रख देने के कारण बारात लौट गई। ऐसी परिस्थिति में अचानक किसी साहसी युवक ने आगे बढ़कर कन्या का हाथ थामने का प्रस्ताव किया और विवाह उसी मुहूर्त में सम्पन्न हो गया। इस प्रकार ऐसा कुछ घट जाना जो कुछ क्षण पहले तक किसी की कल्पना में भी नहीं था, उसे संयोग के अतिरिक्त क्या कहा ही जा सकता है। संयोगवश घटने वाली घटनाओं की श्रृंखला बहुत लम्बी है। विचार करने पर हममें से हर एक को स्वयं हमारे अपने साथ या हमारी जानकारी में घटित किसी न किसी संयोग का स्मरण अवश्यक हो जाएगा। संयोग मात्र सुख ही नहीं होते, दुखद भी होते हैं। हमारे सामने की कुछ दिन पूर्व की घटना है। नर्मदा के घाट पर हम कुछ परिवार पिकनिक मनाने हेतु गये थे। खेलना-कूदना, गप-शप, हंसी-मजाक, खाना-पीना चल रहा था। सब उल्लास और मस्ती के मूड में थे। अचानक एक बच्चा जो घाट के पास तैर रहा था, गहरे पानी में चला गया और डूबने लगा। जब तक कोई कुछ समझे सोचे, हमारे एक साथी उस अनजान बच्चे को बचाने हेतु नदी में कूद पड़े और देखते ही देखते वहीं उनकी जलसमाधि हो गई। न कोई जान न पहचान, न कोई रिश्ता न नाता, एक अजनबी के लिए उन्होंने अपनी जान दे दीं अब इसे एक दु:खद संयोग नहीं तो और क्या कहेंगे। बेटे-बेटी के विवाह की चर्चा चल पड़ने पर बड़े-बूढ़ों के मुंह से आमतौर पर सुनने को मिलता है कि सम्बन्ध तो वहीं होगा जहां संयोग होगा। संयोगों के प्रति हमारी सदा से चली आई आस्था का एक रूप यह भी है। संयोगों का न तो कोई पूर्वाभास होता है और न उन पर हमारा कोई वस या नियंत्रण ही होता है। वह तो बस घट जाते हैं। विदेशों में हर बात पर शोध और अनुसन्धान करने की परम्परा है। सम्भव है किसी ने संयोग के घटित होने पर भी खोज की हो और निष्कर्ष निकाला हो, वरना एक आम आदमी के लिए तो आज भी संयोग मात्र एक अनबूझ पहेली है।

– पद्‌म्‌श्री डॉ. पूनम सूरी जी के साथ अनऔचपारिक बैठक में चर्चा के कुछ अंश

श्री योगेश मुंजाल जी लाला दीवान चन्द ट्रस्ट के प्रधान निर्वाचित

डी.ए.वी कालेज प्रबन्धकर्त्री समिति के उपप्रधान, श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा के कार्यकारी प्रधान, उद्योगजगत के उद्योगपति, प्रसिद्ध समाज सेवक महात्मा सत्यानन्द मुंजाल के सुपुत्र **श्री योगेश मुंजाल जी को लाला दीवान चन्द ट्रस्ट के प्रधान सर्वसम्मति से निर्वाचित किए गए है।** हम टंकारा ट्रस्ट की ओर से हार्दिक शुभकामनायें एवं बधाई प्रेषित करते हुए परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि उन्हें सामर्थ्य दे ताकि उनके नेतृत्व में लाला दीवान चन्द ट्रस्ट दिन प्रतिदिन उन्नति के शिखर पर पहुंचकर समाज सेवा के कार्यों में अग्रसर रहें।

प्रवेश सूचना

आर्ष कन्या गुरुकुल, दाधिया, अलवर, राजस्थान, मो. 9672223865, 9416078595

साबी नदी के किनारे स्वस्थ जलवायु युक्त **आर्ष कन्या गुरुकुल, दाधिया** में छठी कक्षा से प्रवेश प्रारम्भ है तथा प्रथमा से आचार्य तक गुरुकुल पद्धति से महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक से संबंधित पाठ्यक्रम नि:शुल्क पढ़ाया जाता है। गुरुकुल में योग्य प्राचार्य तथा अनुभवी प्राध्यापिकायें अध्यापन कार्य में रत है। सुन्दर छात्रावास, गौशाला, यज्ञशाला पुस्तकालय, व्यायामशाला के प्रबन्ध के साथ आर्ष पद्धति पर आधारित इस गुरुकुल में आचार-व्यवहार, स्वास्थ्य, चरित्र निर्माण, देशभक्ति तथा धार्मिक शिक्षा योगाभ्यास आदि द्वारा कन्याओं का स्वर्णिम विकास करवाया जाता है, प्रवेश प्रारम्भ है।

सम्पर्क करें-प्राचार्य, आर्ष कन्या गुरुकुल, दाधिया, अलवर, राजस्थान-301401

दान (त्याग) करें.... परन्तु किसे?

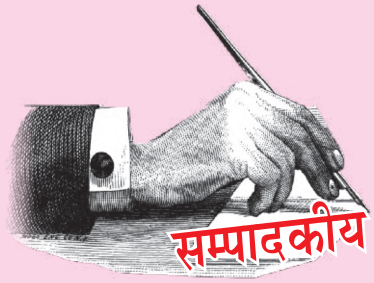

दान करना बहुत अच्छी बात है, क्योंकि उससे त्याग करने की क्षमता बढ़ती है, एक कथन के अनुसार संसार में त्याग ही एकमात्र ऐसी वस्तु है, जो अभय प्रदान करती है। भारतीय परम्परा के अनुसार सार्वजनिक जीवन में त्याग करने पर विशेष बल दिया है। 'त्याग नेक जीवन का सिद्धान्त् है और वह लोग जो कुछ प्राप्त करते हैं, उससे महान् नहीं बनते, बल्कि वे जो कुछ त्यागते हैं, उससे महान् बनते हैं। उपर्युक्त आधार पर त्याग और दान उपयोगिता और महत्ता की दृष्टि से जुड़वाँ भाई हैं। लेकिन त्याग विवेकपूर्ण होना चाहिए और दान सुपात्र को ही दिया जाना चाहिए।

भिक्षा या भीख मांगने वाले हट्टे-कट्टे भिक्षार्थी कभी सुपात्र नहीं हो सकते, क्योंकि वे हाथ फैलाने के आलावा कुछ नहीं करते (केवल नशा और चोरी)। यदि आप अंध धार्मिक या अति भावुक बनकर उनके भोजन पानी आदि की व्यवस्था में सहयोग देते हैं तो आप उन्हें और भी नकारा बनाते हैं। वे आपना पेट पालने के लिए अंधविश्वासी भक्तों और विवेकहीन दानियों को बेवकूफ बनाने का धंधा करते हैं। कई बार तो वे भिखारी लोग ठग ही नहीं, चोर उचक्के भी होते हैं।

मन्दिरों के बाहर, ट्रैफिक लाईट पर आपको नकली के अपाहिज, नकली के अन्धे आपको धोखा देने के लिए खड़े मिल जायेंगे। किसी भी मन्दिर के बाहर बैठे मांगने वालों की असली जानकारी लेना चाहते हो तो मन्दिर बन्द होने के कुछ समय पूर्व सारे दिन बांटने वाले की कतार में खड़े होकर लिया गया सामान इतना इकट्ठा हो जाता है कि उससे कई परिवार भोजन कर सकते हैं मांगने वाले उस समय अपनी पसंद की वस्तु को रखकर बाकि वहीं फेक जाते हैं और प्राय: मन्दिर का सफाई कर्मचारी उसे कुड़े में फेंकते देखे गये है।

उसी समय रात्रि को अपनी नकली पट्टियों आदि खोलते हुए देखे जा सकते है और वही मन्दिर के स्थान की ओर चला जाता है, कभी दान देने वाला टूटी साईकल पर अपनी श्रद्धा से दान देने आया लेकिन मांगने वाला भिखारी किसी अच्छे मोटर साईकल पर जा रहा होता है। आग्रह है ऐसे दान..... मत करें जहां अधिक आवश्यकता हो वहीं दान देवें।

मांगने वालों का भी एक व्यवस्थित व्यापार है कुछ प्रमुख लोग वेतन पर भीख मांगने वालों को नौकरी देते हैं। उन्हें सुबह मन्दिरों पर छोड़कर जाते हैं रात्रि लेने वापस आते हैं एक स्थान पर पैसा इकट्ठा होता है। प्रत्येक कर्मचारी का व्यौरा लेना होता है और महीने के अन्त में उस अमुक मांगने वाले के द्वारा एकत्र किये गये धन के आधार पर उसका अगले माह का वेतन निर्धारित होता है (ऐसा कई बार समाचार पत्रों में पढ़ा गया है।)

कभी-कभी वे माँगते आपको डराकर-यदि आपने उन्हें दान नहीं दिया तो आपका अमुक नुकसान हो जाएगा-आपको झुकाना चाहते हैं, पर यह उनका सिर्फ चालूपन होता है। ऐसे दान-भुक्खड़ों से सावधान रहिए।

यदि आपको दान देना ही है तो आज लुप्त होती गाय हेतु दान दे, वेद शिक्षा के प्रचार-प्रसार में दान दे। होनहार गरीब बच्चों को छात्रवृत्ति दीजिए, अनाथों की जिन्दगी बनाइए, अपाहिजों की मदद कीजिए, बेसहारा बीमारों का इलाज करवाइए, अभागी और संकटग्रस्त विधवाओं का विवाह करवाइए। परन्तु विश्वसनीयता अवश्य परख लें। किसी एक को न देकर ऐसे कार्यों में लगी संस्थाओं को देवें।

यदि आपका पेट अच्छी तरह से भर रहा है तो ओवर-ईटिंग की बिल्कुल जरूरत नहीं है। अपनी समृद्धि में से थोड़ा अभाववालों के लिए भी कुछ करके देखिए-आपकी आत्मा खिल उठेगी। अपनी सम्पत्ति का सही उपयोग कीजिए। आप अपने साथ उसमें से कुछ भी लेकर जानेवाले नहीं है। अपने को विवेकी बनाये और जो भी दान देवें सात्विक रूप से किया दान ठीक स्थान पर प्रयोग हो इसका ख्याल रखें।

गुप्त दान और यश- एक साहब ने जब अपने दोस्तों के बीच यह कहा कि गुप्तदान केवल वे लोग करते हैं, जिन्हें दो नंबर की कमाई छिपानी होती है (या फिर बहुत ही कम राशि दान में देनी होती है, जैसे दो तीन रूपए) तो उनके एक पंडित दोस्त ने प्रतिवाद करते हुए उनसे पूछा, लेकिन पुराने जमाने में जब आय कर नहीं लगता था, तब भी गुप्तदान को महादान क्यों कहा जाता था?

साहब ने जवाब दिया-'उसका कारण यह है कि जो लोग उस समय दान नहीं दिया करते थे, वे ईर्ष्यावश यह नहीं चाहते थे कि दान देने वालों का समाज में नाम हो और यश फैले। दानदाता बेचारा अपने सीधेपन में खुद को 'महादानी' मानने के चक्कर 'महादानी' क्या, 'दानी' मात्र होने के बारे में भी कोई नहीं जान पाता था।

हमारा मानना है कि दान देनेवालों को अपना नाम जरूर बताना चाहिए और जितना सम्मान उसका हो उतना उसे ईमानदारी से मिलना चाहिए। कम भी नहीं और ज्यादा भी नहीं। यह उसके अच्छे काम के पुरस्कार के रूप में है। यह भी हो सकता है कि उसका नाम फैलने के कारण कुछ अन्य लोग उसके साथ कार्य विशेष के लिए दान देने को प्रेरित हो जाएं। सही अर्थों में हर प्रबुद्ध व्यक्ति नाम और यश के लिए जीता हैं उसे उसके लिए जीना भी चाहिए, क्योंकि किसी को नाम और यश। तभी मिलता है जब वह समाज के लिए कुछ करता है।

दूसरी बात यह है कि आदमी अपने साथ संसार में यश को छोड़कर कुछ भी नहीं ले जाता-न धन संपत्ति, न शरीर का कोई अंश। इसके विपरीत, यश उसका साथ उसके सैकड़ों साल बाद तक रहता है। हमारे लिए सबसे अधिक पूज्य स्वामी दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज, पं. लेखराम महात्मा आनन्द स्वामी अपने नाम और यश के कारण ही सदा के लिए अमर हैं। उन्होंने यह नाम और यश अपने जीवनकाल में समाज को सभी प्रकार के दान दे-देकर अर्जित किया था। उसके द्वारा मानव को दिए गए सम्पूर्ण देय को दुनिया जानती है। कुछ भी गुप्त नहीं है। यदि वे अपना दान गुप्त रूप से करते तो न तो उनका नाम-पता कोई जानता और न उनके असीम अवदान से कोई प्रेरणा ले पाता। और वे हमारे आदर्श न बन पाते।

अजय टंकारावाला

टंकारा ट्रस्ट द्वारा चलाई जा रही गतिविधियों के लिए आप निम्न प्रकार से सहयोग कर सकते हैं

परिवार के एक बालक को गुरुकुल में पढ़ाएं अथवा गुरुकुल के
एक ब्रह्मचारी का वार्षिक व्यय 20,000/- रुपये देवें

गौ-दान : महा-दान–उपदेशक विद्यालय के ब्रह्मचारियों की पर्याप्त मात्रा में दूध की व्यवस्था हेतु एक गऊदान करें अथवा 75,000/- रुपये की सहयोग राशि गऊ हेतु देवें।
(तीन व्यक्ति मिलकर भी 25,000/- प्रति व्यक्ति भी दे सकते है।)

गऊ पालन एवं पोषण हेतु 12,000/- रुपये का हरा चारा एवं
पौष्टिक आहार की व्यवस्था (एक गऊ का वार्षिक व्यय)

1000/- रुपये की सहयोग राशि देकर स्वामी दयानन्द सरस्वती जन्मभूमि के सहयोगी सदस्य बनें। यह राशि आपको प्रतिवर्ष देनी होगी। इसलिए अपना पूरा पता अवश्य लिखवायें।
जो दान देवें उसके अतिरिक्त यह 1000/- रूपये राशि अवश्य देवें।

श्री ओंकारनाथ महिला सिलाई-कढ़ाई केन्द्र की बेटियों द्वारा बनाए गए
सामान को क्रय करके सहयोग कर सकते हैं।

ब्रह्मचारियों के एक सत्र का भोजन 20,000/- रुपये की सहयोग राशि देकर।

ऋषि बोधोत्सव पर 1,50,000/- रुपये की सहयोग राशि देकर एक सत्र के भोजन में सहयोग

20,000/- रुपये की सहयोग राशि प्रति वर्ष किसी एक दिन का (जन्मदिवस अथवा
स्मृति दिवस) ब्रह्मचारियों का भोजन देकर सहयोग कर सकते है।

ब्रह्मचारियों के पहनने हेतु सफेद कपड़ा एवं दैनिक प्रयोग में आने वाली वस्तुएं देकर

**टंकारा ट्रस्ट को दी जाने वाली राशि आयकर की धारा 80 G के अन्तर्गत मान्य है।
एवम् C.S.R. दान प्राप्त करने हेतु पंजीकृत।**

यह दान नकद/चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा **''श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा''** के नाम दिल्ली कार्यालय आर्य समाज (अनारकली) मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-110001 अथवा श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा जिला-मौरबी-363650 (गुजरात) के पते पर भिजवाकर पुण्यार्जन करें। आप सहयोग राशि खाता न. 4665000100001067, पंजाब नैशनल बैंक, IFSC CODE PUNB0015300 में जमा करा सकते हैं अथवा दिए गए क्यू.आर.कोड (YES Bank) पर स्कैन करके राशि जमा करा सकते है। जमा की गई सहयोग राशि, तिथि एवम् पते की सूचना मो. 09560688950 पर देवें।

20240715108542@yesbank

Scan this QR code with any UPI app to make payment to

SHRI MAHARISHI DAYANAND SAMARAK TRUST TANKARA

Payment Secured By Easebuzz

–:निवेदकः–

योगेश मुंजाल
कार्यकारी प्रधान

अजय सहगल
मन्त्री (मो. 9810035658)

उपकार्यालयः आर्य समाज अनारकली मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-110001 सम्पर्कः 09560688950 (व्यवस्थापक)

मनुष्यों पर ईश्वर द्वारा किये गये उपकार

❑ खुशहालचन्द्र आर्य

मनुष्य योनि अन्य सभी पशु-पक्षी, कीट-पतंग, कीड़े-मकौड़े आदि योनियों से भिन्न है। इसको अनेक वरदान देकर ईश्वर ने धरती पर भेजा है। मनुष्य योनि का मिलना अनेक जन्म जन्मातरों में किये शुभ कर्मों का फल है। सुना तो यह जाता है कि जीव चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने के बाद फिर मनुष्य योनियों में आता है। पर हमारे धार्मिक ग्रन्थ यह कहते हें कि जीव को मानव योनि में आने के लिए सब योनियों से गुजरने की कोई जरूरत नहीं। जीव अपने संचित बुरे व अच्छे कर्मों का फल भुगत लेने पर किसी भी योनि से मनुष्य योनि में आ सकता है। मनुष्य योनि छोड़ने के बाद जीव की तीन गतियां हो सकती हैं। पहली गति है कि जीव ने अपने मनुष्य योनि में सभी काम शुभ किये हों और पिछले जन्मों में भी शुभ कर्म करता आ रहा है, तब ईश्वर के न्याय व्यवस्था के अनुसार उसे मोक्ष मिल जाता है जिसकी अवधि 31 नील, 10 खरब, 40 अरब वर्षो की होती है। फिर वह धरती पर पुनः मनुष्य योनि में आ जाता है। दूसरी गति मनुष्य जीवन में उत्तम, मध्यम व निम्न मनुष्य योनि ही मिल जाती है और यदि मनुष्य ने अपने जीवन में पचास प्रतिशत् से कम शुभ कर्म किये हों, यानि अशुभ कर्म अधिक किये हों तब उसको ईश्वर की व्यवस्था के अनुसार के अनुसार पशु-पक्षी, कीट-पतंग की योनि मिल जाती है।

मनुष्य पर ईश्वर के क्या-क्या उपकार या वरदान हैं, उनका विवरण यहां करते हैं।

ईश्वर की सर्वोत्तम व अन्तिम कृतिः ईश्वर ने पूरी सृष्टि की रचना करके यानि पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, समुद्र, पर्वत, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे आदि को बनाकर तत्पश्चात् मनुष्य की उत्पत्ति तिब्बत के सर्वोच्च पठार पर कृत्रिम गर्भाशय बनाकर युवा अवस्था में अनेक नर-नारियों को उत्पन्न किया जिसे अमैथुनिक सृष्टि कहते हैं। तभी वेद ज्ञान सुनवाया। इसके बाद मैथुनिक उत्पत्ति शिशु के रूप में आरम्भ हो गई। वैसे तो ईश्वर की बनाई सभी कृतियां पूर्ण हैं, जैसे सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, जल, वायु, पेड़, पौधे, पशु, पक्षी व वेद आदि, वैसे ही मनुष्य भी अपने आप में पूर्ण है। इनमें कम ज्यादा करने की कोई गुंजाइश नहीं परन्तु मानव सबसे अधिक विकसित होने से सबसे अधिक सुन्दर व श्रेष्ठ है। इसके बाद ईश्वर ने कोई कृति नहीं बनाई, इसलिए यह अन्तिम कृति है।

यही मोक्ष का द्वार हैः जीव का मनुष्य योनि में आने का मुख्य उद्देश्य या लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है, जिसके लिए ईश्वर जीव को मनुष्य देह में भेजता है। मोक्ष प्राप्ति की अन्य कोई योनि नहीं। मोक्ष की स्थिति में जीव ईश्वर के सान्निध्य में पूर्ण आनन्द प्राप्त करता हुआ सब स्थानों पर विचरते हुए मोक्ष की अवधि (जो ऊपर लिख आये हैं) तक रहता है। अवधि पूर्ण होने पर पुनः संसार में मनुष्य योनि में आता है, फिर पहले की भांति इसकी प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है।

मनुष्य को बुद्धि तथा हाथ विशेष दिये हैं- ईश्वर ने पूरी सृष्टि मनुष्य के लिए रचकर उसको सृष्टि की हर वस्तु का सदुपयोग करने का अधिकार दिया, साथ ही उनके पालन और रक्षा करने की जिम्मेदारी भी दी। इसलिए ईश्वर ने जीव को बुद्धि तथा हाथ विशेष दिये हैं जिससे वह अच्छे-बुरे को समझकर सब प्राणियों से अच्छा व्यवहार करे तथा हाथों से शुभ काम व सेवा करें। अपने ही स्वार्थ का काम करना, दूसरे के हित व अहित का ध्यान न रखना, यह मानवता नहीं है।

मनुष्य भोग तथा कर्म दोनों योनि हैः पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि सिर्फ भोग योनि हैं। ईश्वर उनको सिर्फ उनके पूर्व जन्म में किये कर्मों का भोग करने के लिए नई योनि देता है। वे इस जन्म में जो भी कर्म करेंगे उसका फल ईश्वर नहीं देता, परन्तु मनुष्य भोग योनि के साथ-साथ कर्म योनि भी है। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में ईश्वर की न्याय व्यवस्था के अधीन है यानी परतंत्र है। ईश्वर ने मनुष्य को बुद्धि इसलिए दी है कि दूसरे जीव पशु-पक्षी जो उसके अधीन हैं, उनसे उचित व्यवहार करे। उनसे उचित काम लेने का अधिकार मनुष्य को ईश्वर ने अवश्य दिया है, पर उनसे अनुचित व्यवहार करना या उनको मारकर खाने का अधिकार बिलकुल नहीं दिया है। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है इसलिए वह पशु-पक्षियों को मारकर खा तो सकता है परन्तु ईश्वर अपनी न्याय व्यवस्था से उसे दंड अवश्य देगा और उसकी मृत्यु के बाद उसे अगली न्यूनतम योनि में भेजेगा, जिसमें उसे किये हुए बुरे कर्मों के फल के रूप में दण्ड निश्चित ही मिलेगा, इसलिए मनुष्य को शुभ काम ही करने चाहिए, तभी वह मानव कहलाने का अधिकारी बनेगा।

मनुष्य के लिये ही ईश्वर ने वेद ज्ञान दियाः सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने चार दिव्य आत्माओं वाले चार ऋषियों के हृदय में चार वेदों का ज्ञान प्रकाशित किया तथा उनके मुख से उच्चारित करवाया। वे चार ऋषि थे अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा। उनके मुख से क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद कहलवाये। यह पावन वेद ज्ञान सुनकर लोगों ने कंठस्थ कर लिया, कारण सृष्टि के आरम्भ में जितने भी मानव पैदा हुए उनमें जो उत्तम दिव्य आत्माएं थीं उनको एक बार सुनने से ही सब मंत्र कंठस्थ हो गये। फिर गुरु-शिष्य परम्परा के अनुसार यह प्रक्रिया लाखों वर्षों तक चलती रही, इसलिए वेदों को श्रुति कहते हैं यानि सुनकर याद किया हुआ ज्ञान। जब लिखने की सामग्री कागज, स्याही, कलम का आविष्कार हुआ तब इनको ग्रन्थों का रूप दे दिया गया। मनुष्य अपने जीवन में क्या काम करे या क्या काम न करे, यह सब ज्ञान ईश्वर ने वेदों में दिया है, जिसके ऊपर आचरण करने से मनुष्य अपने जीवन को उच्चतम स्थिति में पहुंचा सकता है और मोक्ष का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

मनुष्य में दोनों ज्ञान होते हैंः ज्ञान दो किस्म के होते हैं। एक स्वाभाविक, दूसरा नैमित्तिक। स्वाभाविक ज्ञान वह है जो ईश्वर सब जीवों को देता है। यह ज्ञान ईश्वर पशु-पक्षियों में अधिक और मनुष्यों में कम देता है। कारण पशु पक्षी इसी ज्ञान से सब काम करते हैं। दूसरा नैमित्तिक ज्ञान वह होता है जो सिखाने से सीखा जाता है। यह ज्ञान मनुष्यों में अधिक होता है। इसी ज्ञान से मनुष्य अनेक विद्याओं को सीखते हुए वेदज्ञ बनता है। वेदों में ईश्वर ने उतना ही ज्ञान दिया है जितना मनुष्य को अपने जीवन में आवश्यक है, इससे अधिक कहना भूल है।

मनुष्य चारों पुरुषार्थ पाने में समर्थः ईवर जीव से चारों पुरुषार्थ

(शेष पृष्ठ 15 पर)

मातृभूमि की महिमा नागरिकों द्वारा गुणगान

हे हमारी मातृभूमि! तुझ पर रहने वाले, विश्वास करने वाले हमारे राष्ट्रवासी कोई साधारण लोग नहीं हैं। उनमें भी अनेक कोटियां, छवियां हैं। वे सभी मानव हैं, मनु की सन्तान हैं। उनके माता-पिता और फिर उनके भी पूर्वज परम्परा से मनु होते आये हैं अर्थात् मननशील होते आए हैं। विचारशील लोग हैं। उनमें भले-बुरे का ज्ञान है। इस नीर-क्षीर विवेक के वे धनी होते आये हैं। ऐसे मननशील मनु लोगों की सन्तान होने के कारण तेरे सभी अधिवासी स्वयं भी मनु हैं-मननशील हैं। वे उचित अनुचित, अच्छे-बुरे का ज्ञान रखते आये हैं। उनका प्रत्येक कार्य विचारपूर्वक होता है। मनन्-चिन्तन् और अनुशीलन-राष्ट्रों में यह राष्ट्र विशिष्ट है। हमारे राष्ट्र के विचारशील लोग अपनी विचार-शक्ति से काम लेकर गति, उन्नति को निरोध करने वाले, आगे बढ़ने में रूकावट डालने वाले, उन्नति के मार्ग में बाधा उत्पन्न करने वाले, उन्नति-विरोधी सभी बातों को बंधन में लाते रहते हैं। उनका संयमन करते रहते हैं, उन्हें रोके रहते हैं। वे विघ्न-बाधाओं को परे हटाकर लगातार उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ते रहते हैं।

मातृभूमि की विशेषताएं- हे मातृभूमि! तेरे अधिवासी ये समस्त मानव लोग जब उन्नति की राह पर आगे बढ़ते हैं तब इन उन्नतिगामी लोगों में अनेक प्रकार की उच्चता, समता और निम्नताएं गोचर होती हैं। हाथ की सभी अंगुलियां यद्यपि समान नहीं होती, किन्तु एक हाथ से जुड़ी रहती हैं। इसी तरह कोई क्षेत्र में औरों से आगे बढ़ गया है और कोई किसी में। इसका यही तात्पर्य है कि उन्नति के शिखर पर चढ़ने वालों में सभी समान हैं। उन्नति की चोटी पर चढ़ने की दृष्टि से हमारे राष्ट्र के अधिवासियों में पाई जाने वाली यह अनेक प्रकार की विभिन्नता उसी प्रकार सुन्दर प्रतीत होती है जिस प्रकार पर्वत पर खड़ी हुई देवदारुओं (वृक्षों) की वनमाला के ऊँचे-नीचे पेड़ रमणीय प्रतीत होते हैं। इससे पर्वतों की चोटियां और भी सुन्दर दिखाई देती हैं।

सामाजिक चेतना-वैदिक ऋषि समाज में निवास करने वाले विभिन्न समूहों में आगे बढ़ने तथा शीर्ष बिन्दु तक अग्रिम पंक्ति में खड़े रहने की इच्छा होनी चाहिए। ऋषि समाज में आलस्य, प्रमाद तथा अकर्मण्यता हटाकर प्रत्येक को आगे बढ़ने की इच्छा रखना चाहिए। समाज की प्रत्येक इकाई वैयक्तिक उन्नतिके साथ सामाजिक उन्नति की ओर अग्रसर हो। यद्यपि समाज में विभिन्न रूचियां, प्रकृतियां एवं स्वभाव-प्रवृत्तियां विद्यमान रहती हैं, परन्तु सबका लक्ष्य देश की उन्नति एवं उसे चरम बिन्दु पर पहुंचाना होना चाहिए। उनका लक्ष्य विश्व के अनेक देशों से भी सबसे आगे देश की लाज रखने की ललक रखना चाहिए। राष्ट्रनायकों को चाहिए कि प्रगति में रोड़े अटकाने वाले, देश-निष्ठा में प्रमाद करने वाले एवं राष्ट्र धातकों के प्रति कड़ी निगाह रखना चाहिए। विदेशी तत्वों से तो और भी सावधानी रखने की आवश्यकता है। अन्यथा देश की सम्प्रभुता में दरार उत्पन्न हो सकती हैं। ऐसे पञ्चमर्गीय तत्वों को निकाल बाहर करना ही उत्तम होगा।

प्राकृतिक सम्पदायें- हे मातृभूमि! तू अमृतरसमय है। तेरी छाती पर अनेक प्रकार की औषधियां उगती रहती हैं-अनेक प्रकार के अनाज और जड़ी बूटियां उपजती रहती हैं। इन अनाजों और जड़ी-बूटियों में अनेक प्रकार की शक्तियां (वीर्य) हैं। इनमें अनेक प्रकार की शक्ति, प्रभाव और गुण हैं। हे मातृभूमि! उनकी ही खेती करके, तेरे ये मानव मननशील विद्वान् पुत्र इन औषधियों को तुझ पर उपजाते हैं और फिर सेवन करके इनके गुणों से शक्ति प्राप्त करते हैं। तत्पश्चात् इनसे ही अनेक लाभ उठाते हैं। हे मातृभूमि! तू बहुत उर्वरा है तू इतनी अधिक उर्वरा है कि बिना खेती, कृषि-कार्य के भी तेरे पर्वतों और जंगलों में अनेक प्रकार की औषधियां उत्पन्न होती रहती हैं। इस प्रकार तू सदैव अपने अधिवासी मानवों का कल्याण करती रहती है। यहां हम हमारे सुधी पाठकों के लिए स्वाध्याय तथा मननशील बंधुओं के लिए औषधियां तथा वनस्पतियां किन्हें कहा जाता हैं, संक्षेप में वर्णन प्रस्तुत करते हैं- (क) औषधिः जो पौधे फल पकने के बाद सूख जाते हैं, वे औषधियां कहाती हैं। जैसे गेहूं, जौ, चना। (ख) वनस्पतः पुष्परहित फल वाले वृक्ष वनस्पति कहलाते हैं। जैसे गूलर, पीपल आदि। (ग) क्षुपः झाड़ियां, बेलें आदि। द्रष्टव्य-मनुस्मृति 1-46-47

ध्यातव्यः वनों में प्राधान्य वृक्ष, वनस्पतियों का होता है, इसलिए 'वनमस्मिन्नहित' वनिनः का अर्थ वृक्ष वनस्पतियां किया है। वन पण संभक्तौ+इनि धात्वर्थानुसार यह औषियों का विशेषण भी बन सकता है। वनिनः=सेवनीय। सन्दर्भ-वैदिक नित्यकर्म विधि (बृहद यज्ञ विधि) पृष्ठ 142, लेखक पं. युधिष्ठिर मीमांसक। रामाल कपूर ट्रस्ट, बहागढ़ सोनीपत (हरियाणा)

निष्कर्ष- हम मानवों की अधिवास भूमि है, हे मातृभूमि! तू हमारे लिए विस्तीर्ण वन, हमें प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए खुला स्थान प्रदान कर, उन्नति करने का प्रत्येक अवसर हमारे लिए उपस्थित कर। इस प्रकार हमारी उन्नति के प्रयासों, प्रयत्नों द्वारा तू स्वयं खूब समृद्ध बना। हममें किसी प्रकार के शौर्य, ऐश्वर्य की, किसी प्रकार की समृद्धि की कमी न रहने पाये। इस प्रकार इस वेद-मन्त्र में किसी भी राष्ट्र के लोगों को मानव का भले-बुरे का विचार करके काम करने वाला बनना चाहिए वैयक्तिक और राष्ट्रीय उन्नति की विरोधी बातों को रोकते रहना चाहिए। उन्नति के मार्ग में निरन्तर आगे बढ़ते रहना चाहिए। पृथ्वी पर उपजने वाले अनाजों, जड़ी-बूटियों, वनस्पतियों के गुणों को जानकर उनसे लाभ उठाना चाहिए।

– स्व. मनुदेव 'अभय' विद्या वाचस्पति, 'सुकिरण' अ/13, सुदामा नगर, इन्दौर

सार्वदेशिक आर्य वीरांगना दल का शिविर दिल्ली में

सार्वदेशिक आर्य वीरांगना दल का वार्षिक राष्ट्रीय शिविर 2025 इस बार दिल्ली में दिनांक 7 जून से 15 जून 2025 तक संस्कार शिक्षा कुंज स्कूल, गोंडा रोड, गली न. 9 बी, स्वतन्त्र नगर, नरेला, दिल्ली-110040 (मोबाईल न. 9315254900) में आयोजित किया जा रहा है। इसमे भाग लेने के लिए 13 वर्ष से अधिक आयु की आर्य वीरांगनाएं दिनांक 26 मई 2025 तक अपने नाम निम्नलिखित नम्बरों पर देवें ताकि व्यवस्था सुचारु रूप से हो सके।

साध्वी डॉ. उत्तमा यति- प्रधान संचालिका, मो. 9672286863

मृदुला चौहान- संचालिका, मो. 9810702760

मानव समाज में वेद की महत्त्वपूर्ण भूमिका

❑ पं वालकेश्वर आर्य (विद्यावाचस्पति)

जिस प्रकार परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ कृति मनुष्य है। उसी प्रकार मनुष्य का भी एक सर्वश्रेष्ट कार्य है जिसका नाम है समाज। इसलिए मनुष्य को सामाजिक प्राणी भी कहते हैं। मनुष्य ने अपने समाज में जिस प्रकार के नियम और व्यवस्थाएं बना रखी हैं, उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह पूर्ण रूप से उसने परमात्मा की नकल की है, क्योंकि परमात्मा अपने द्वारा निर्मित सृष्टि के नियमों में बंधा है, वैसे ही मनुष्य अपने द्वारा निर्मित समाज के नियमों में बंध जाता है।

इस प्रकार हम यदि इसके मूल कारण को जानना चाहें तो ''अनुशासन पर पहुँचते हैं। क्योंकि परमात्मा भी अपने आप में अनुशासित होता है। यदि वह अनुशासित नहीं होता तो प्रत्येक दिन प्रलय और निर्माण करता रहता। वह 14 मन्वन्तर के लम्बे समय का इंतजार ना करता। इसी अनुशासन को हम जड़ और चेतन दोनों में पा सकते हैं। जड़ रूपी सूर्य यदि अनुशासित नहीं हो तो कभी भी किसी स्थान पर निकल जाए तथा छिप जाए। अतः अनुशासन न होने पर अव्यवस्था फैल जाएगी, ऐसा चिन्तन् कर परमात्मा ने मनुष्यों के समाज को वेद दिया। क्योंकि अनुशासन के प्रत्येक नियम को मनुष्य वेद से प्राप्त कर अपने ऊपर प्रयोग करेगा और गन्तव्य स्थान मोक्ष को प्राप्त करेगा।

मनुष्य के पास तो स्वभाविक गुण तो पशुवत होते हैं। वैसे खाना-पीना, रोना आदि। बल्कि पशुओं में मनुष्यों से अधिक स्वभाविक गुण होते हैं। उनके जन्म लेने के बाद माँ के स्तन को बताना नहीं पड़ता है। उन्हें यदि पानी में डाल दिया जाए तो वे तैरने लग जाते हैं। यहाँ तक कि उनकी संवेदन शक्ति को तो अब वैज्ञानिकों ने भी मान लिया है। अक्सर हम यह देखते हैं कि बड़े-बड़े नेता लोग जिस स्थान पर आते हैं, वहाँ खोजी कुत्ते लाये जाते हैं, यद्यपि उनके पास वैसे यन्त्र भी मौजुद होते हैं जिससे गुप्त पदार्थों का पता लगाया जाता है। फिर भी कुत्ते लाये जाते हैं। परन्तु मनुष्य के जन्म लेने के बाद एक-एक कार्य करने के लिए उसके माता-पिता आचार्य आदि लोग बताते हैं। मनुष्य सोचने में स्वतंत्र होता है। इसलिए वह अच्छे बुरे दोनों प्रकार के कार्यों को करता है। जैसा कार्य करता है वैसा फल भी अवश्य मिलता है। मनुष्य बिना बताए कोई कार्य नहीं कर सकता। उसे सुख शान्ति आदि चाहिए तथा संसार की आवश्यक वस्तुएँ भी चाहिए। माता-पिता जिस प्रकार अपनी संतान को कार्य करने के लिए, सुख सुविधा के लिए उसकी आवश्यक वस्तु की पूर्ति करते हैं। वैसे ही संसार के लोगों के लिए उस पिता ने आवश्यक वस्तु 'वेद' को मानव समाज में दिया। इन वेदों के अन्दर ही आवश्यकता पूर्ति के लिए उपाय और उत्तम मार्ग बताए गए हैं। हमारे मन में कभी-कभी विचार बनता है कि इतने अधिक मंत्रों वाले वेद को मानने में काफी परेशानियाँ आती हैं। इसलिए किसी एक या दो को मान ले बाकी को छोड़ दें तो क्या नुकसान होगा? परन्तु ऐसा मान लेने से जो नुकसान है, उसको एक उदाहरण से समझने का प्रयास करते हैं।

एक घाव का रोगी जिसके हाथ में बड़ा घाव है। उसे डॉक्टर के पास ले जाया गया। डॉक्टर ने ईलाज किया। उसके बाद घर जाते समय उस रोगी को कहा कि-घाव को शीतल जल से धोकर उस पर मलहम का लेप करना, उसके बाद पट्टी बाँध लेना और कुछ दवाईयाँ हैं इन्हें प्रत्येक दिन खाना और घाव पर पट्टी भी प्रत्येक दिन लगाना। अब घर पहुँच कर वह रोगी सोचता है कि चार काम डॉक्टर ने दिये हैं जो बहुत मुश्किल है, मैं दवा खा लूँगा और केवल नई पट्टी बांध लिया करूंगा। बाकी ना तो धोऊँगा ना ही मलहम लगाऊँगा, क्योंकि मलहम और पानी दोनों घाव पर मिर्च की भांति लगते थे उसने वैसा ही किया और वह कैंसर से मारा गया।

बिल्कुल इस रोगी की हालत उस व्यक्ति की तरह है जो चारों वेदों में से किसी एक को भी मानने से इंकार करता है। क्योंकि चारों वेदों का उद्देश्य एक है, परन्तु चारों कार्यों की पूर्ति होने पर ही लक्ष्य प्राप्त होता है। चिन्तन् का विषय है कि एक डॉक्टर घाव ठीक करने के लिए नियम बताता है तो क्या परमात्मा जो इतनी बड़ी सृष्टि को चला रहा है उसने कोई नियम नहीं दिया। उसने नियम बना रखा है। उस नियम को वेद कहा जाता है।

अतः मनुष्य यदि वेद को छोड़ दें तो पथ भ्रष्ट हो जाता है, आस्तिक के बदले नास्तिक हो जाता है। माता हमें बताती है कि अमुक व्यक्ति तुम्हारा पिता है तो हम अपने संसारिक पिता को जान पाते हैं, नहीं तो हमें इसके बारे में पता नहीं होता कि हमारा पिता कौन है? वैसे ही वेद माता हमें बताती है कि तुम्हारा वास्तविक पिता कौन है? कहाँ है, कैसा है? और हम वास्तविक पिता को जान पाते हैं। इसी कारण वेद को हम ''वेद माता'' भी कहते हैं। क्योंकि वह परमपिता परमेश्वर का ज्ञान कराती है। यदि हम वेद माता को माने ही नहीं तो हमें कौन बताएगा कि हमारा वास्तविक पिता कौन सा है? मान लें यदि किसी ने बता भी दिया तो बताने वाले ने वेद को माता माना है, यदि ऐसा भी नहीं तो वह उसके बारे में हमें कोई ठोस ज्ञान नहीं दे सकता और ना ही हमारा उस परमपिता पर विश्वास बन पाएगा। क्योंकि जितनी जानकारी सांसारिक माता को सांसारिक पिता के बारे में होती है उतनी किसी और को नहीं होती है। ना ही इस पिता पर भी हमारा विश्वास कोई और दिला सकता है सिवाय माता के। वैसे ही वेद माता के अन्दर जितना ज्ञान परमात्मा के बारे में है उतना किसी अन्य के पास नहीं है। जब हम वेद को नहीं मानेंगे तो हमें परमपिता पर विश्वास न होने से हम नास्तिक बन जायेंगे। इसलिए आस्तिक बनने के लिए भी मानव समाज को वेद मानना ही पड़ेगा।

एक अन्य बात यह भी है कि हम यदि किसी एक वेद को नहीं मानते हैं तो उसके विषय से छुट जाते हैं। चाहे वह ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान चारों में से कोई सा भी विषय हो। एक को छोड़ने पर सबका संबंध नष्ट हो जाता है। उदाहरणार्थ-कर्म ही न करें तो अन्य तीनों में से कोई भी नहीं प्राप्त हो सकता है। इससे भी व्यक्ति अधोगति को प्राप्त होता है और अंधकारमय योनियों में उत्पन्न होता है। इसलिए मानव समाज के लिए सबसे महत्वपूर्ण है कि सब व्यक्ति आस्तिक हो और यह तभी संभव है जब वेद को माता माना जाएगा।

मानव समाज के लिए वेदों की भूमिका में सबसे महत्वपूर्ण है मानव को आस्तिक बनाना। व्यक्ति जैसे ही आस्तिक हो जाऐगे वैसे ही स्वानुशासित (स्व-अनुशासित) भी हो जायेंगे। अनुशासित होने पर हर

(शेष पृष्ठ 14 पर)

सुखी परिवार

❒ आर्यमुनि वानप्रस्थ

इस सृष्टि में प्रत्येक वस्तु की उपयोगिता है कोई भी वस्तु पूरी तरह निरर्थक नहीं है। प्रत्येक वस्तु का अपना महत्त्व होता है इस सृष्टि की सर्वोत्तम रचना होने के कारण मनुष्य को चाहिए कि अपनी शारीरिक, आत्मिक एवं मानसिक शक्तियों का विकास करे ताकि वह सांसारिक पदार्थो का सही-सही उपभोग कर सके और अपना परलोक भी सुधार सके। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मनुष्य के पुरुषार्थ चतुष्टय हैं। संसार के भोग्य पदार्थों में बड़ा आकर्षण है, परन्तु धर्म पूर्वक, त्याग पूर्वक भोग करने में ही मनुष्य का कल्याण है। मनुष्य संसार में रहकर ही अपने चरम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। यह तभी सम्भव है जब वह अपने सभी कार्यो को ईश्वर को समर्पित करके 'यज्ञ' रूप में करे। हम सब सुखी होना चाहते हैं, परन्तु सुख हमसे दूर भागता रहता है। कारण? हम सुखी होने के कार्य नहीं करते प्राय: यह समझा जाता है कि सुख के साधन हैं, धन-धान्य, भाई-बन्धु, जमीन-जायदाद, मकान, सोना-चाँदी आदि आदि परन्तु ऐसा समझने वाले प्राय: भ्रमित ही रहते हैं और सुख उनसे दूर ही दूर भागता है। वास्तव में मानसिक शान्ति ईश्वर की उपासना से प्राप्त होती है। जो मनुष्य अपने को ईश्वर की शरण में ले जाता है उसे ही सच्ची शान्ति और सुख मिलता है।

कठोपनिषद् में कहा गया है कि दो मार्ग हैं, श्रेय और प्रेय। प्रेय आकर्षक है, परन्तु सच्चा सुख प्राप्त नहीं कराता, श्रेय-श्रेयमार्ग के पथिक की आत्मा निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर रहती है। वह सदैव ईश्वर के सान्निध्य में रहता हैं। उसे न दु:ख, न भय न किसी वस्तु का अभाव रहता है। क्योंकि वह ईश्वर की समीपता को अनुभव करते हुये सदैव सन्तुष्ट रहता है। आज के युग में मानव भौतिकता की चकाचौंध में इतना अन्धा हो गया है कि उसे भौतिक पदार्थो की प्राप्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं दीखता। उसे इस बात की किंचित भी चिन्ता नहीं होती कि उसके अपने कामों से देश व समाज का कितना अहित हो रहा है। ऐसा स्वार्थी व्यक्ति अन्त में स्वयं भी दु:खी होकर ही मरता है। सुख और दु:ख के अर्थ सभी जानते हैं, जो इन्द्रियों को प्रिय लगे, वही सुख और जो इन्द्रियों को प्रिय न लगे वह दु:ख है। वैसे सुख और दु:ख आत्मा के लक्षण हैं। पर ये उसके स्वाभाविक लक्षण नहीं नैमेत्तिक हैं। हम अपने कर्मो से ही सुखी और दु:खी होते हैं। अत: जो भी सुखी होना चाहता है अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखे। मर्यादाओं का पालन करे। उसे बुरा न देखना चाहिये, न बोलना चाहिए, न सुनना चाहिये और न बुरा चिन्तन करना चाहिए।

समाज कैसे सुखी हो इस पर विचार करते समय हमें समाज की छोटी इकाई परिवार पर ध्यान देना होगा। परिवार में भी इकाई के रूप में परिवार के सदस्य होते हैं। जिनमें पहली पीढ़ी पितामह, पितामही, दूसरी में पिता, माता व तीसरी में बच्चे होते हैं। इनमें अन्य व्यक्ति भी होते हैं जिनसे हमारा रक्त का सम्बन्ध होता है। परिवार सुखी होगा तो समाज भी सुखी होगा और राष्ट्र भी। आर्य लोग एक प्रार्थना करते हैं जो बड़ी सार्थक है 'सुखी बसे संसार सब दु:खिया रहे न कोई।' परिवार में एक दूसरे के प्रति कर्त्तव्य की भावना, सेवा सुश्रुषा, देखभाल, छोटों का अच्छे संस्कार देने की योजना, सहृदयता आदि गुण हों तो परिवार सुखी रहता है।

माता-पिता तो होते ही हैं वे सास व ससुर के रूप में भी होते हैं। उनका जैसा मधुर प्रेम का व्यवहार अपने पुत्र, पुत्रियों के लिए होता है। ऐसा ही बहुओं के साथ भी करें कभी कठोर शब्दों का प्रयोग न करें। सदैव अपने से छोटों का पथ-प्रदर्शन तथा सहायता करने को तैयार रहना चाहिए। उनकी गल्तियों को क्षमा करें और उनका उत्साह बढ़ायें अपना दृष्टिकोण उदारवादी रखें और उनकी आवश्यकतानुसार रूपये पैसे से भी (यदि सामर्थ्य है तो) मदद करते रहें। विभिन्न अवसरों पर एक दूसरे को उपहार देते रहें। सास ससुर को अपनी सारी जिम्मेदारियाँ बहू-बेटे को सौंप देनी चाहिये, वेद के अनुसार बहिन-बहिन से और भाई-भाई से तथा बहिन भाई से और भाई बहिन से प्रेम का व्यवहार करें। मीठे, मधुर, प्रिय, कल्याणकारी वचन बोलें। पुत्र माता-पिता का आज्ञाकारी हो और अपने बहिन भाईयों के साथ मिलकर रहे, बाँट कर खाये।

परिवार के सभी सदस्यों में एकता होनी चाहिए। आपस में सौहार्द बना रहे, प्रेम बना रहे, एक दूसरे के प्रति त्याग की भावना होनी चाहिए। परिवार के सब सदस्य स्वस्थ हों, दुर्गुण, दुर्व्यसनों से दूर रहें, आहार-विहार सात्विक हो सब लोग अपनी-अपनी योग्यता एवं सामर्थ्य के अनुसार अपने कर्त्तव्यों का पालन करें। लोकलाज से बचें कभी भी छिपा कर धन सम्पदा का संचय न करें। सदैव एक दूसरे की सहायता के लिए तत्पर रहें। स्वाध्याय अवश्य करें परिवार के बच्चों को पास बैठाकर उन्हें राष्ट्र प्रेम, देश प्रेम एवं नैतिकता की बातें बतायें। महान् पुरुषों के जीवन चरित्रों से उन्हें अवगत कराते रहें। आज कल परिवार क्यों टूट रहे हैं। हमारे अन्दर स्वार्थ की भावना घर करती जा रही है। सेवा भावना का अभाव है। हम त्याग नहीं बल्कि संग्रह में विश्वास करते हैं। जब मनुष्य केवल अपना-अपना ही सोचता है तो वह कभी भी सुखी नहीं रह सकता। आजकल शासक भी चरित्रवान लोग नहीं है। संसद में सांसद ऐसे लड़ते हैं जैसे वे माननीय न होकर सामान्य लोग हैं। उन पर सरकार का बहुत अधिक धन व्यय होता है। उनकी सुरक्षा में करोड़ों रूपये व्यय होते हैं जबकि उन्हें तो कोई खतरा होना ही नहीं चाहिए। यह सब संस्कारों की कमी के कारण है।

अत: सुखी रहने के लिए हमें कर्त्तव्यपरायण, परोपकारी, नि:स्वार्थ, सेवाभाव वाला, ईश्वर विश्वासी और सहानुभूति पूर्वक व्यवहार करने वाला होना चाहिए। त्याग पूर्वक भोग करें। अपने साधनों में रहना सीखें। सदैव दूसरे की सहायता में तत्पर रहें। ये कुछ छोटी-छोटी बातें हैं जो मनुष्य एवं परिवार को सुखी बनाने में सहायक हैं।

– 100, न्यू प्रभात नगर, मेरठ (उ.प्र.)

महर्षि दयानन्द को जानिये मानिये

❒ स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्मत सृष्टिसंवत् पर विचार करते हैं। वे (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदोत्पत्ति विषय में) लिखते हैं कि "जितने वर्ष अभी ऊपर गिन आये हैं उतने ही वर्ष वेदों और जगत् की उत्पत्ति में भी हो चुके हैं।"

"एतावन्त्येव वर्षाणि वर्तमानकल्पसृष्टेश्च इति"

इतने ही वर्ष इस कल्प ब्राह्मदिन एवं सृष्टि को हो चुके हैं। महर्षि दयानन्द के मन्तव्य के अनुसार सृष्टि संवत् (=जगदुत्पत्ति संवत्), मानवोत्पत्ति संवत्, वेदोत्पत्ति संवत् कल्पारम्भसंवत् एक ही हैं।

कुछ लोग यह कहते हैं कि 'जगत् के निर्माण में छः चतुर्युग (24920000 वर्ष) व्यतीत होते हैं। वेद, मानव और जगत् 114 चतुर्युगपर्यन्त बने रहते हैं।' किन्तु महर्षि दयानन्द ठीक इस के विरूद्ध 1000 चतुर्युगपर्यन्त मानव एवं वेद को विद्यमान लिखते हैं। वे लिखते हैं कि, 'जबपर्यन्त हजार चतुर्युगी व्यतीत न हो चुकेंगी तब पर्यन्त ईश्वरोक्त वेद का पुस्तक, यह जगत् और हम सब मनुष्य लोग भी ईश्वर के अनुग्रह से सदा वर्तमान रहेंगे।'

इस लेख के अनुसार मानव और वेद पूर्णरूप से हजार चतुर्युगपर्यन्त भूमिपर विद्यमान रहते हैं न कि 994 चतुर्युगपर्यन्त।

महर्षि 1000 चतुर्युग पर्यन्त सृष्टि की, मानवों की, वेदों की उपस्थिति को स्वीकार करते हैं। इसमें 14 मन्वन्तर, 15 सन्धिकाल होते हैं। यह एक ब्राह्मदिन=कल्प का परिणाम है। इस विषय में मनुस्मृति में कुछ भी लिखा नहीं है। इनकी आशा भी नहीं करनी चाहिये। क्योंकि मनुस्मृति वेद का संविधान वा धर्मशास्त्र है। ज्योतिषशास्त्र नहीं है। मनुस्मृति में ये नहीं होते। उसमें मन्वन्तरों की सङ्ख्या उनका नाम ढूंढना **'उपस्थितं परित्यज्य अनुपस्थितं याचते इति बाधितन्यायः'** है।

महर्षि प्रामाणिक परम्परा को मान्यता देने वाले मनस्वी हैं। उन्होंने कण्ठतः स्वीकार किया है कि सहस्र चतुर्युगपर्यन्त मानव और वेद सृष्टि में बने रहते हैं। महर्षि के लेख के रहते हुये यह मानना कि 'सृष्टिसंवत् में सन्धिकाल नहीं होता, सन्धिकाल मनुस्मृति में नहीं है', ऋषि के लेख को न पढ़ना और अपने मन्तव्य को महर्षि पर आरोपित करना मात्र है। 'महर्षि सन्धिकाल को स्वीकार नहीं करते, कहने वाले स्वयं सन्धिकाल को नहीं मानते परन्तु महर्षि तो मानते हैं। अपने को शोधार्थी, विद्वान् माननेवालों ने ऋषि के ग्रन्थों पर बिना विचारे विद्यमान सृष्टिकाल को बदल दिया स्वयं और आर्य जगत् में भारी अन्धपरम्परा चलाई। अनर्थ फैलाया। ज्योतिर्विद्याविदों के समक्ष स्वयं उपहास के पात्र बने हुए हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने प्रतिदिन के संकल्प को, ज्योतिष के ग्रन्थों को, तिथि पत्रों को, पञ्चाङ्गों को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया है। ये प्रमाण ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में लिखे हैं।

1. 'इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र में यथावत् वर्षों की सङ्ख्या आर्य लोगों ने गिनी है, सो सृष्टि की उत्पत्ति से लेके आज पर्यन्त दिन गिनते और क्षण से लेके कल्पान्त की गणित विद्या को प्रसिद्ध करते चले आते हैं, अर्थात् परम्परा से सुनते सुनाते, लिखते लिखाते और पढ़ते-पढ़ाते आज पर्यन्त हमलोग चले आते हैं। यही व्यवस्था सृष्टि और वेदों की उत्पत्ति के वर्षों की ठीक है, और सब मनुष्यों को इसी को ग्रहण करना योग्य है।'

ज्योतिष के समस्त ग्रन्थों में 14 मन्वन्तर, 15 सन्धिकाल और एक सहस्रचतुर्युगों का ही सृष्टिसंवत् है। किसी भी ज्योतिषग्रन्थ में इससे भिन्न सृष्टिसंवत् नहीं है। इसके अनुसार वर्तमान से सृष्टि को बने, मानवों का, वेदों को उत्पन्न हुवे 1972949113 एक अरब सत्तानवे करोड़ उन्तीस लाख उनंचाससहस्र एक सौ तेरह वर्ष व्यतीत हो गये हैं। यहा 14 चौदवां वर्ष चल रहा है।

2. 'आर्य लोग तिथिपत्र में भी वर्ष, मास और दिन आदि लिखते चले आते हैं। और यही इतिहास आज पर्यन्त सब आर्यावर्त देश में एक सा वर्तमान हो रहा है और सब पुस्तकों में भी इस विषय में एक ही प्रकार का लेख पाया जाता है, किसी प्रकार का इस विषय में विरोध नहीं है।'

आर्यावर्तवासी आर्यलोग जो तिथिपत्र बनाते हैं उनमें सर्वत्र वर्षमासादि लिखते हैं। ये ही वर्षमासादि आर्यावर्त के कोने कोने में एक समान हैं।

भारत में मुद्रित होने वाली पुस्तकों में जहां कहीं वर्षादि लिखा होता है वहां सब स्थानों पर (सब तिथिपत्रों में) 14 मन्वन्तर, 15 सन्धिकाल एवं एकसहस्र चतुर्युग युक्त सृष्टिसंवत् 1972941993 वर्ष ही है। सन्धि काल रहित सृष्टिसंवत् कहीं सुनने, पढ़ने, देखने में नहीं आया।

3. 'जब जैन मुसलमान आदि लोग इस देश के इतिहास और विद्यापुस्तकों का नाश करने लगे तब आर्य लोगों ने सृष्टि के गणित का इतिहास कण्ठस्थ कर लिया और जो पुस्तक ज्योतिषशास्त्र के बच गये हैं उनमें और उनके अनुसार जो वार्षिक पञ्चाङ्गपत्र बनते जाते हैं इनमें भी मिति बराबर लिखी चली आती है। यह वृत्तान्त इतिहास का इसलिए है कि पूर्वोतर काल का प्रमाण यथावत् सबको विदित रहे, और सृष्टि की उत्पति, प्रलय तथा वेदों की उत्पति के वर्षों की गिनती में किसी प्रकार का भ्रम किसी को न हो, सो यह बड़ा उत्तम काम है।' इसका सार-

1. इस देश के इतिहास और विद्यापुस्तकों का नाश होने लगा।
2. तब आर्य लोगों ने सृष्टि के गणित का इतिहास कण्ठस्थ कर लिया।
3. ज्योतिषशास्त्र की कुछ पुस्तकें बच गयी।
4. ज्योतिषशास्त्र की पुस्तकों के अनुसार पञ्चाङ्गपत्र बनाये जाते हैं।
5. ज्योतिषग्रन्थों में और पञ्चाङ्गपत्रों में मिति लगातार चली आती है।

सृष्टि के गणित के अनुसार सृष्टिसंवत् में 14 मन्वन्तर, 14 सन्धि काल, एकसहस्र चतुर्युग (न कि 994 चतुर्युग) होते हैं। यह एक ब्राह्मदिन है। यही कल्प है। सृष्टि को (ब्राह्मदिन=कल्प को) आरम्भ हुए उस पर मानव एवं वेदों को उत्पन्न हुए अब तक 1972949113 वर्ष हुवे हैं। आर्यलोगों का कण्ठस्थ किया गणित का इतिहास यही है। यह आसेतु हिमालय पर्यन्त मानने में, बोलने में, पढ़ने में, लिखने में आता है।

जलाये जाने पर बचे हुवे ज्योतिषग्रन्थ सैकड़ों हैं इनका बड़ा इतिहास है। सहस्त्रों वर्षों से लिखा जाने वाला ज्योतिष का साहित्य है। उसमें सर्वत्र पूर्ववत् ही है। सर्वत्र 1972949113 वर्षों का सृष्टिसंवत् मानवसंवत्, वेदसंवत् है। भिन्नता लेश भी नहीं है।

आज देश के कोने कोने में प्रतिवर्ष चैत्रादि, कार्तिकादि पञ्चाङ्ग बनते हैं। ये कोई तीन सौ से अधिक प्रकार के (पञ्चाङ्ग) बनते हैं,

(शेष पृष्ठ 14 पर)

ऋषि जन्मभूमि टंकारा में प्रवेश प्रारंभ

श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट-टंकारा द्वारा संचालित

महात्मा सत्यानन्द मुंजाल गुरुकुल (आर्य पद्धति कक्षा 6 से 10वीं तक)

श्री महर्षि दयानन्द अन्तर्राष्ट्रीय उपदेशक महाविद्यालय

कक्षा-6 (प्रथमा प्रथम खण्ड)
कक्षा-7 (प्रथमा द्वितीय खण्ड)
कक्षा-8 (प्रथमा तृतीय खण्ड)
कक्षा-9 (पूर्व मध्यमा प्रथम वर्ष)
कक्षा-11 (उत्तर मध्यमा प्रथम वर्ष)
कक्षा-उपदेशक (10वीं कक्षा उत्तीर्ण होने के बाद)

प्रवेश हेतु आवेदन करें: 15 जून 2025 से 30 जून 2025

प्रवेशार्थ संक्षिप्त नियमावली- ❑ गुरुकुल में परीक्षा-पाठ्यक्रम कक्षा 6-12 तक हरियाणा शिक्षा बॉर्ड द्वारा सम्बन्धित है। ❑ 12वीं से शास्त्री (बी.ए.) पर्यन्त महर्षि दयानन्द विश्व विद्यालय रोहतक हरियाणा से सम्बन्धित है। ❑ गुरुकुल के पाठ्यक्रम में संस्कृत मुख्य विषय है। ❑ अनुशासन एवं व्यवस्था गुरुकुलीय है, जिसका परिपालन प्रत्येक छात्र द्वारा करना अनिवार्य होगा। अनुशासन भंग करने तथा अध्ययन में अयोग्य सिद्ध होने पर छात्र को निष्कासित कर दिया जायेगा। ❑ गुरुकुलीय अनुशासन के अन्तर्गत निर्धारित अथवा भाविष्य में पारित तथा संशोधित समस्त नियम छात्र एवं अभिभावकों द्वारा पूर्णतः स्वीकरणीय होंगे। ❑ गुरुकुल परिसर में गुरुकुलीय गणवेश के अतिरिक्त वस्त्र-धारण की स्वीकृति नहीं दी जायेगी। ❑ गुरुकुलीय व्यवस्था में किसी पर्व आदि अवसरों पर छात्र को गृह-अवकाश पर भेजने का नियम नहीं है। विशेष परिस्थिति में आचार्य की अनुमति से अवकाश प्रदान किया जा सकता है। अवकाश समाप्ति के 10 दिन तक अनुपस्थित रहने पर छात्र का नामांकन रिरस्त समझा जायेगा। ❑ प्रवेश के लिए आवेदन-पत्र के साथ छात्र का पूर्व विद्यालय की उत्तीर्ण अंकसूचि, स्थानान्तरण-प्रमाण (T.C) सम्बन्धित शिक्षाधिकारी से प्रतिहस्ताक्षरित (Counter sign) किया हुआ संलग्न करना अनिवार्य है। ❑ छात्र की लिखित एवं मौखिक प्रवेश-परीक्षा आवश्यक है, उसमें उत्तीर्ण होने पर ही प्रवेश हो सकेगा। ❑ छात्र स्वस्थ, सुशील एवं बुद्धिमान होना चाहिए।

गुरुकुल में क्यों पढ़े?- ❑ ईश्वर के सच्चे स्वरूप को जानने के लिए, ❑ सन्तानों को सुशिक्षित करने के लिए, ❑ अन्धविश्वास और पाखण्डों को चुनौति देने के लिए, वैदिक धर्म की पुनः स्थापना के लिए, ❑ गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था की स्थापना के लिए, ❑ आश्रम व्यवस्था को जानने के लिए, राजधर्म को जानने के लिए, ईश्वर, जीव और प्रकृति के भेद को समझने के लिए, जगत् की उत्पति, स्थिति और प्रलय को समझने के लिए, ❑बन्धन और मोक्ष विषय को जानने के लिए, ❑ धर्म के सत्य स्वरूप को जानने के लिए, ❑भारत वर्ष में फैले मत-मतान्तरों में सत्य असत्य का निर्णय करने के लिए, ❑भारतीय संस्कृति को समझने के लिए, ❑ युवकों में बढ़ती हुई नास्तिकता को रोकने के लिए, ❑ धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक क्रान्ति के लिए, ❑ विश्व में मानव धर्म को विस्तृत करने के लिए, ❑ वैचारिक क्रान्ति के लिए।

सुविधाएँ- ❑ आवास व्यवस्था, ❑ उच्च गुणवतायुक्त भोजन (पौष्टिक), ❑ निःशुल्क शिक्षा, ❑ गुणवतायुक्त शिक्षा, ❑ स्वच्छ वातावरण, ❑ खेल-कूद का मैदान, ❑ निःशुल्क प्राथमिक उपचार, ❑ प्रत्येक बच्चे का मानसिक, शारिरीक नैतिक व भावात्मक विकास।

आचार्य रामदेव शास्त्री, मो. 7990163657, 9913251448
डाक टंकारा, जिला मोरबी (सौराष्ट्र गुजरात) 363650, फोन- 0282287756

सूर्य-उषाकाल एवं परमात्मा का सामन्जस्य

❒ मृदुला अग्रवाल

ब्रह्ममुहूर्त्त से ''सूर्योदय'' तक के मध्य का समय ''उषाकाल'' के रूप में प्रकट होता है। वास्तव में दूर परन्तु समीपस्थ के सदृश प्रतीत होती हुई आरूण रंग की 'उषा' जब सारे संसार को अरूण व तेजस्वी कर देती है, उसी क्षण सूर्य की किरणों को भी फैला देती है। ऋतुओं के अनुसार प्रकाशमान उषाकाल के आगमन के साथ, सभी प्राणी (मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि) निद्रादेवी की गोद से उद्बुद्ध हो, अपने आलस्य को निवृत कर, परमात्मा की महिमा का अनुभव कर, उसी के ध्यान में निमग्न होते हुए अपने-अपने कार्य में प्रवृत्त हो जाते हैं। इस उषाकाल का महत्व ऋषि, महर्षि, शास्त्रकार एवं सभी महात्मा गौरव सहित वर्णन करते चले आये हैं कि जो पुरूष सूर्य की किरणों के समान सबको धर्म-सम्बन्धी पुरूषार्थ में संयुक्त करते हैं और वैसे ही बताते है तथा इस उषाकाल में उठकर परमात्म-परायण भी होते हैं, उनको परमात्मा सब प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करते हैं एवं उनके अगले-पिछले जन्मों को भी पवित्र करते हैं। 'उषा' सूर्य की रश्मियों का एक पुंज है। जब वह रश्मियें एकत्र होकर पृथ्वीतल पर पड़ती हैं तब एक प्रकार का अमृतभाव उत्पन्न करती हुई कई प्रकार के व्रत धारण कराती है। जैसे याज्ञिक लोग इसी काल में यज्ञों द्वारा परमात्मा का आह्वान करते हैं। प्रजाजन नाना प्रकार के व्रत, नियम, सन्ध्या इत्यादि को धारण कर अमृतभाव को प्राप्त होते हैं। उषाकाल के ''सूर्य'' का विकास अन्तरिक्ष को प्रकाशित करता हुआ, अंधकार को दूर कर, सब जीवों को नई चेतना देता है। इसी प्रकार ईश्वर से मिली आनन्द की अनुभूति काम, क्रोधादि शत्रुओं को दूर कर नवस्फूर्ति देती है। ''सूर्य'' श्रेष्ठतम ज्योति है और वही विश्व विजेता है, उसी का प्रकाश सर्वत्र फैला हुआ है। वही अन्न, बल एवं ज्ञान को प्रदान करने वाला है तथा ज्ञान के सूर्य में सत्य स्थित है।

''सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा''

-अथर्ववेद, काण्ड-2, सूक्त-16, मन्त्र-3

अर्थात् हे सूर्य! तू दृष्टि के साथ मेरी रक्षा कर। सूर्य प्रकाश का आधार है, उसी से नेत्र में ज्योति आती है। मनुष्य को सूर्य के समान अपनी दर्शनशक्ति संसार में स्थिर रखनी चाहिए।

''चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरूणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥''

-यजुर्वेद अ. 3 46 एवं सामवेद, म.627 ॥

परमात्मा मनुष्यमात्र का उपास्यदेव है। इसी भाव से यजुर्वेद और सामवेद दोनों के अन्तर्गत इस मन्त्र के द्वारा परमात्मा का सूर्य नाम से वर्णन किया है। सूर्यलोक वा परमात्मा देवों=तारागणों वा ज्योतिगणों के विचित्र समूह को लांघ कर उदय होता है अर्थात् सर्वोपरि प्रकाशमान है। प्राण, अपान और अग्नि का प्रकाशक प्रेरक है। चलने वाले और न चलने वाले जगत् का आत्मा है। वही द्युलोक, भूलोक, अन्तरिक्षलोक इन तीनों को सब ओर से पालित-पोषित करता हुआ प्रकाश से परिपूर्ण करता है। संपूर्ण स्थावर-जंगम की आत्मा सूर्य को इसलिये कहा है कि जैसे जीवात्मा शरीरेन्द्रियों का जीवनहेतु है, वैसे ही सूर्य चराचर का जीवनहेतु है। सूर्य के उदय होते ही मृतसमान चराचर फिर चेतन हो जाते हैं।

सूर्य उषा को प्राप्त होकर दिन को प्रकट कर सबको सुख देता है। वह शुभ मार्ग का प्रेरक है।

''उदुसिचाः सृजते सूर्य सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत्।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भवतेन गमेमहि॥''

-सामवेद, उत्तराचिक अध्याय-2, मंत्र-752

सूर्यलोक सदा उचित नक्षत्र और किरणों वाला है। हे उषा (प्रभात बेला) हम तेरे और सूर्य के प्रकाश में ही अन्न से समागम करें। अर्थात् मनुष्य सदा सूर्यादि के प्रकाश में ही भोजन करना चाहिए, अन्धकार में नहीं। सायणाचार्य ने इसके भाष्य में लिखा है कि यह विदेशीय आधुनिक विद्वानों का नवीन आविष्कार नहीं है, अपितु सायणाचार्य के समय तक भी हमारे देशवासी इस विज्ञान को वैदिक शास्त्रानुसार जानते रहे।

इस सूर्य की चमक शरीर के भीतर प्राण, अपान, उदान, समान, ब्यान नामक पांच वृत्तियों में से मुख्य प्राण को जब प्रेरित करती है तभी स्थावर-जंगमों के शरीरों में वायु का नीचे ऊपर जाना आदि व्यवहार होता है। जिस प्रकार 'सूर्य' आकाश में वायु से चलता है और लोकों को चलाता तथा वृष्टि आदि उपकार करता है, उसी प्रकार विद्वान् जन विद्या, उत्तम शिक्षा और उपदेशवृष्टि से सबके आत्माओं को प्रकाशित करते हुए आनन्द एवं मुक्तिपद को प्राप्त कराते हैं। सूर्य की रश्मियों के समान चमकने वाले सद्गुणों को एवं दूसरों की पीड़ा हरने वाले उत्तम व्यवहारों को आत्मज्ञान द्वारा प्रकाशित करते हैं।

यही भाव गीता के 5वें श्लोक में भी स्पष्टीकरण किया है-

''ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्॥''

अर्थात्- जिनका वह अन्तकरण का अज्ञान आत्मज्ञान द्वारा नाश हो गया है उनका (वह) ज्ञान सूर्य के सदृश उस सच्चिदानन्दघन परमात्मा को प्रकाशता है अर्थात् परमात्मा के स्वरूप को साक्षात् कराता है।

सूर्य व उषाकाल के शुद्ध तेज से विषैले कीटाणुओं का नाश होता है जिससे कई प्रकार के रोगों की निवृत्ति होती है। चोरों की दुष्टबुद्धि की बुद्धि भी प्रकाशित होती है। जिससे मनुष्य को अपने सब विघ्नों का नाश करके आत्मिक बल बढ़ाकर संसार में उपकार करना चाहिए एवं आनन्द को भी भोगना चाहिए। जैसे सूर्य तिहरे उत्तापक रश्मि जाल से मेघ को अन्तरिक्ष से नीचे धरती पर ला देता है, वैसे ही दसों इन्द्रियों से अर्चित प्रभु की संरक्षा में स्थित ऐश्वर्य का साधक, प्रकाश लोक के कोश को तिहरे ज्ञान, कर्म व उपासना के तप के आनुपातिक समन्वय से समन्वित साधक एक नई अद्भुत शक्ति पाता है, फिर वह मानो अहिंसनीय हो जाता है और सुसम्पादित दिव्य आनन्द से प्रभु के सामर्थ्य को प्रकटता है। सूर्य द्वारा मेघ छिन्न-भिन्न किए जाते है; ऐसे ही मानव की प्रज्ञा तामस वृत्तियों को काटती है एवं सद्भावनाओं की रक्षिका बन जाती है। जो मनुष्य सुकर्मरहित है, अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं रखता है अथवा उन्हें दिव्यगुणी नहीं बनाना चाहता है निद्रा-आलस्य सहित सोता रहता है, वह अपने ही कृत्यों और आचरणों से पुष्टियोग्य ऐश्वर्य को नष्ट कर देता है; उस अकर्मण्य व्यक्ति को प्रभु प्रदत्त सत्य, सनातन भोग भी नहीं मिलते।

''अपत्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः। सूराय विश्वचक्षसे॥''

-सामवेद, अ. 6, मन्त्र-633 ॥

(शेष पृष्ठ 14 पर)

વાચક મિત્ર, તમે 'નેતિ નેતિ' શબ્દ સાંભળ્યો હશે. **'નેતિ' એટલે 'ન ઈતિ'**. જેનો અંત કે છેડો ન હોય તે નેતિ! શાસ્ત્રકારો કહે છે, વેદા અનંતા! વેદ શું છે? તેમાં શું શું છે? તેની રસપ્રદ વાતો કરીશું, પણ તે પહેલાં તૈતિરીય આરણ્યકની વેદની અનંતતા દર્શાવતી એક સુંદર કથા માણીએ.

માણસ કેટલું જાણી શકે? પર્વતમાંથી મુઠ્ઠી જેટલું! વેદના મહાન ઋષિઓમાં એક નામ મહર્ષિ ભરદ્વાજ છે. તેમની જ્ઞાનની તરસ પણ ખૂબ તીવ્ર. તેમણે ત્રણ જન્મ સુધી જીવનભર વેદદર્શન કર્યું. તેમ છતાં તેમની જાણવાની ઈચ્છા વધુ ને વધુ તીવ્રતર બનતી રહી. તેમની સાધનાથી પ્રભાવિત થઈ ઈન્દ્રદેવ તેમની પાસે આવ્યા અને પૂછ્યું કે, જો તમને ચોથીવાર માનવજીવન મળે તો શું કરશો? મહર્ષિએ કહ્યું, 'હું બસ આમ સતત અભ્યાસ કરતો રહીશ, જ્યાં સુધી મને તેનો અંત ન જડી જાય ત્યાં સુધી'. ઈન્દ્રદેવે તેને ત્રણ મોટા પર્વત દેખાડ્યા. અને કહ્યું, 'આ વેદત્રયી (ઋક, યજુસ્ અને સામ) છે. મહર્ષિ ભરદ્વાજ ચકિત થઈ ગયા. એ પર્વતોનો છેડો તેમને દેખાતો જ નહોતો! પછી ઈન્દ્રદેવે તેમને એ ત્રણેય પર્વતોમાંથી એક એક મુઠ્ઠી માટી લઈને ભરદ્વાજને આપી અને કહ્યું કે, માણસ માટે આટલું જ કાફી છે, વેદ તો અનંત છે!'

આ વાતનો સાર કેવો મજાનો છે? કોઈ એક વિષયમાં પી.એચ.ડી. કરી લઈએ તો પણ બધું ક્યાં જાણી શકીએ છીએ? અને તે પણ આધુનિક યુગમાં આટઆટલા સાધનો હોવા છતાં! ગ્રીક વિદ્વાન એરિસ્ટોટલ કહે છે, 'THE MORE YOU KNOW, THE MORE YOU REALIZE YOU DON'T KNOW!" અર્થાત્ તમે જેટલું વધુ જાણો તેમ-તેમ હજુ શું શું નથી જાણી શક્યા નથી એ વાતનો તમને અહેસાસ થાય! આવી જ વાત 'તાઓ તે ચિંગ'માં લાઓ ત્ઝુ કહે છે, 'THE WISE MAN IS ONE WHO KNOWS WHAT HE DOESN'T KNOW!' પોતે શું નથી જાણતો, એ જાણે તે ખરો જ્ઞાની. વેદ અનંતા

વેદ કેટલા? ત્રણ કે ચાર? વિદ્વાનો વેદત્રયી એવો શબ્દ વાપરે છે. બીજીબાજુ વેદોની સંખ્યા ચાર- ઋગ્વેદ, યજુર્વેદ, સામવેદ અને અથર્વવેદ હોવાનું બધા સ્વીકારે છે. અહીં સ્પષ્ટતા કરીએ કે વેદત્રયી શબ્દ વેદની સંખ્યા માટે નથી. ચારેય વેદોમાં ઋક્, યજુષ્ અને સામ નામના ત્રણ પ્રકારના મંત્રો છે. જેને વેદત્રયી કહે છે. 'ઋક્'માં શબ્દસંખ્યા નિશ્ચિત હોય છે અને તે પદ્યાત્મક હોય છે અને તેનો ઉચ્ચાર છંદબદ્ધ રીતે કરવામાં આવે છે. તેને ઋચા પણ કહે છે. ઋગ્વેદમાં મોટાભાગે આ પ્રકારના મંત્રો છે. યજુષ્ શબ્દ યજ્ પરથી આવ્યો છે. તે યજ્ઞયાગાદિ કર્મકાંડમાં ઉપયોગમાં લેવાય છે. આ મંત્રો ગદ્યાત્મક છે. છેલ્લો પ્રકાર સામ છે. સામ એટલે સંગીત. જે લયબદ્ધ રીતે ગવાય તે સામ! સામવેદમાં આ પ્રકારના મંત્રો છે. જો કે, સામવેદમાં મોટાભાગે ઋગ્વેદના મંત્રો છે. આ ત્રણેય પ્રકારના મંત્રો ચારેય વેદમાં ઓછે વધતે અંશે જોવા મળે છે. આપણે ચારેય વેદ અંગે આગળ વાત કરીશું, પણ અત્યારે આટલું સમજી લઈએ કે વેદ ચાર છે અને તેમાં આવતા મંત્રો ત્રણ પ્રકારના છે.

શા માટે વેદને શબ્દપ્રમાણ (ULTIMATE AUTHORITY) **માનવામાં આવે છે?** વેદ શબ્દની વ્યાખ્યા ચાર રીતે થાય છે. 'વિદ્ સત્તાયામ્', 'વિદ્ જ્ઞાને', 'વિદ્ વિચારણે' અને વિદ્લૃ લાભે'. એટલે કે વેદમાં સત્તા (AUTHORITY, RELEVANCE), જ્ઞાન (KNOWLEDGE), વિચાર (THINKING) અને લાભ (USEFULNESS) એમ ચાર ગુણો જોવા મળે છે. સત્તા શબ્દ 'સત્' પરથી આવ્યો છે, જે અવિનાશી અને સ્થળ-સમયની મર્યાદાઓથી પરે હોય તે સત્. વેદ પરમાત્માની વાણી છે અને ઋષિએ તેનું પ્રત્યક્ષ દર્શન કર્યું છે, એટલે તેની સત્તા અમર્યાદ અને અનંત છે.

આપણે ત્યાં પ્રત્યક્ષ, અનુમાન અને શબ્દ એમ ત્રણ પ્રકારનાં પ્રમાણ (પુરાવા) માનવામાં આવ્યા છે. કોઈપણ થિયરી આ ત્રણની કસોટીએ ચકાસવામાં આવે છે. જે આંખથી જોયું હોય તે પ્રત્યક્ષ. રોજબરોજની કે રંગ, આકાર કે અંતર જેવી સામાન્ય બાબતોમાં પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ વાજબી છે. જો કે, માણસની ઈન્દ્રિયો અને તેની સમજશક્તિ મર્યાદિત છે. ઘટના જટિલ હોય તો આંખે જોયેલું પણ પૂરેપૂરું ન સમજાય. એક જ ઘટનાના બે સાક્ષીઓની અનુભૂતિ અલગ પણ હોઈ શકે. જેને આપણે દૃષ્ટિકોણ કહીએ છીએ. એટલે પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ સો ટકા આધારભૂત ન કહેવાય. એ જ રીતે અનુમાન પણ માણસની માનસિક મર્યાદાઓથી બંધાયેલું છે. જેમ કે, ધૂમાડો હોય ત્યાં અગ્નિનું અનુમાન થઈ શકે પણ અગ્નિ હોય ત્યાં ધૂમાડો હોવો જરૂરી નથી! વેદના મંત્રોને શબ્દપ્રમાણ કહે છે. ઋષિએ શાંત, તટસ્થ અને પારદર્શક સમાધિ અવસ્થામાં પરમાત્માનો સાદ ઝીલેલ છે. વળી, ગુરુ-શિષ્ય પરંપરાથી શ્રુતિ પરંપરાથી (સાંભળીને) અકબંધ રીતે જાળવવામાં આવ્યા છે. એટલે વેદ અને તેનું શબ્દપ્રમાણ આખરી છે.

વેદ, નિરુક્ત અને સાયણાચાર્ય વેદ ક્યાંથી આવ્યા? એ વાતનો ફોડ નિરુક્ત પરના ભાષ્યકાર સાયણાચાર્ય આપે છે, 'યસ્ય નિઃશ્વિતં વેદા યો વેદેભ્યઃ અખિલં જગત!' વેદ એ પરમાત્માના પ્રાણમાંથી પ્રગટ થયા કે જે પોતે અખિલ જગતને જાણે છે! 'અથાપિ પ્રત્યક્ષકૃતાઃ સ્તોતારો ભવન્તિ' જે વેદના મંત્ર, દેવતા અને જ્ઞાનને પ્રત્યક્ષ રીતે જોઈ શકે એવા દ્રષ્ટા એટલે ઋષિ! નિરુક્ત એટલે વેદના શબ્દોનો અર્થ સમજવાની ડિક્ષનરી. સાયણાચાર્યે નિરુક્ત પર ભાષ્ય (સમજુતિ) લખીને બહુ મોટો ઉપકાર કર્યો છે. જેના આધારે આપણે વેદમંત્રોને સમજી શકીએ છીએ.

વેદ - સત્યમ્-શિવમ્-સુંદરમ્ જીવનમાર્ગ કોઈ કહેશે કે મારી પાસે વેદો વાંચવા સમજવાનો સમય ક્યાં છે! તમે માનશો? મોટાભાગની આપણી માન્યતાઓ, પરંપરાઓ અને જીવનવ્યવહારમાં ક્યાંક ને ક્યાંક વેદ વણાયેલા છે. વડીલો અને વિદ્વાનોને આદર આપવો એ વાત સહુ માને છે, ખરું ને? બાળકો, વૃદ્ધો અને દુઃખી-બિમાર વ્યક્તિની સેવા કરવી જોઈએ. કવિશ્રી દુલા ભાયા કાગના ભજન 'એ જી તારાં આંગણિયાં પૂછીને જો કોઈ આવે તો આવકારો મીઠો આપજે હો જી'માં આપણી ગૌરવશાળી અતિથિ-સત્કારની પરંપરાની વાત છે. સત્ય, અહિંસા, પ્રેમ, કરુણા, નિઃસ્વાર્થ સેવા, ત્યાગ-બલિદાન જેવા માનવધર્મો હજારો વર્ષથી આ વિશાળ દેશમાં પળાઈ રહ્યા છે. આ બધું કોઈ અકસ્માત્ કે યોગાનુયોગ નથી. આ જીવનમૂલ્યોને લગતા મંત્રો, સૂક્તો અને આખ્યાનોથી વેદસંહિતા છલોછલ છે. એ વેદની શિક્ષા-દીક્ષા જ છે, જેણે ભારતીયતા ઘડી છે.

VEDIC CONCEPT OF CREATION

The theory of evolution is one of the greatest revelations of modern scientific thought. Various philosophers, physicists and scientific men, working independently of one another and in different domains of Nature, have, established the truth of this theory, so that instead of remaining a theory, there are evident signs of its soon becoming a proven fact. The theory enunciates the great truth, that all complexity came out of simplicity heterogeneity out of homogeneity, perfection out of imperfection, variety out of uniformity. All this beauty and grandeur with apparent paradoxes is the result of the struggle which Nature wages towards the attainment of order and perfection.

In the beginning of the present order of things, in some far-off period, in some distant point of time, the whole universe existed in a state of paramanu (atoms), invisible, subtle and unmanifested. That which we know as the earth, the sun, the moon and the stars was then, in the beginning of the Kalpa, but formless matter in its most elemental and attenuated condition-either, no doubt our ancient Aryan philosophers called it—non-being (asat). We involuntarily exclaim with our glorious Rishis :-"Before, O Child, this was a mere state of non-being (asat), one only, without a second. Thereof verily others say : Before this was non-being, one alone, without a second, from that non-being proceeds the state of being."

There is nothing, therefore, inappropriate in the name which the ancients gave this ether-spirit, viz., the anima mundi-the divine inflatus, the Hiranyagarbha. The Aryan title Hiranyagarbha-the womb of light-is far more expressive and scientific than the name ether.

The Evolution of Heart and Light

In the beginning, there was neither nought nor aught.
Then there was neither sky nor atmosphere above.
What then enshrouded all this universe?
In the receptacle of what was it contained?
Then was there neither death nor immortlity,
Then was neither day, nor night, nor light, nor darkness,
Only the Existent One breathed calmly, self-contained.

(Rig. 10.121.1)

First in the beginning, therefore, was this Hiranyagarbha, one only without a second. The next step towards evolution was the generation of heat. The atoms of ether came closer together and united in different proportions and formed molecules. Thus the varous elements were first evolved out of the homogeneous atoms of ether. This union necessarily implies the contraction of the primeval mass. Thus, these two processes, namely chemical union and contraction, gav rise to a great deal of heat.

This intense heat raised the elements to a state of gaseous incandescence, and the whole mass would be now a luminous vapour of all elements, iron, gold etc. This self-luminous vapour has been called by the Aryan Rishis Prajapati (The Lord of all creations) and modern scientists have called such incandescent vapours nebulae (clouds), from their resemblance to white clouds. Thus, there arose light where there was formerly only darkness.

The findings of astrophysicists of today have now reaffirmed the statements of the Vedic declarations, with the help of very sophisticated and ultra-modern scientific equipment. They have gathered information about the circulation of energy and material in space. Astrophysicists are studying how the univers began. Did it all begin with a terrific explosion, the "big-bang"? With the aid of the radio telescope, the scientists in Effelsberg can pick up signals that were sent 15,000 million years ago-when the "big-bang" is believed to have taken place. From these signals and what is now going on in space, it is possible to look back to the beginning of evolution, as if through a window in time : one can resonstruct the "big-bang".

Dr. Schmid-Burgk describes what is supposed to have taken place : "The cosmic material was originally densely packed and very hot. Because of the high temperatures, the atoms had been broken down into nuclei and electrons; even earlier, the nuclei of the atoms had been reduced to their elements, the protons and neutrons. During the hottest moments, the first few fractions of microseconds of the 'big-bang', not even individual protons and neutrons could exist, but only what they are made up of, the quarks. "The signals from space, however, also tell how the universe cooled down, expanded, how stars were born and died. With the passage of billions and billions of years, the time lapse has resulted slowly but surely in the loss of heat, the cooling down of planets which were all a part of the "Fire Ball" once.

The moon was also at one time a part of the earth, and of course being but a smaller body, it has lost almost all its heat. The sun, which was the nucleus of the primitive rotating nebula, still retains a great deal of its heat, but it is not so intense as it must have been in the beginning. However, a time will come when the sun will cool down to darkness and no more be a fountain of light and heat to its planets, when thee will be perfect darkness and intense cold-in fact, when this present cycle will come to an end. Long, long before that time arrives, this our earth will become a desolate wilderness-lifeless, silent and obscure. Seas, rivers, lakes, and oceans will be congealed to ice, even the very air will be a mass of solid. That time, according to Aryan calculations, is 2,333,227,018 years distant.

Modern scientific findings have raffirmed the statement of this Vedic declaration. **—Satyakam Vidyalankar**

[Associate translator of the four Vedas in English, Satyakam Vidyalankar was a profound Vedic scholar, poet and a veteran editor.]

(पृष्ठ 07 का शेष)

कार्य को नियम पूर्वक करने लगेगें। वर्तमान में हमारे पास सबसे कीमती वस्तु आस्तिकता का आभाव हो गया। हमारा विश्वास परमात्मा में नहीं है। इसलिए हम स्व अनुशासित नहीं हैं। स्व अनुशासित न होने से हर स्थान पर दुराचार, भ्रष्टाचार, अत्याचार हो रहा है। अतः समाज की बुराइयों को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका वेद की थी और रहेगी क्योंकि वेद तो आदि से विद्यमान था जब-जब बुराईया बढ़ी उस समय वेदों के माध्यम से उन्हें नष्ट किया गया चाहे वह समय श्री राम और श्री कृष्ण का हो और अब भी इन्हें वेद ही नष्टकर सकता है। मानव की आवश्यकता को पूर्ण करने में भी वेदों की भूमिका है। हर मनुष्य यह चाहता है कि मेरा घर स्वर्ग हो। उसके पुत्र उसकी आज्ञा पालन करें, पत्नी प्यार करे। इस प्रकार की व्यवस्था को वेद कहता है-

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः। जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्। अ.वेद 3-30-2

पुत्र पिता का अनुव्रती हो अर्थात उनके व्रतो को पूर्ण करे। पुत्र माता के साथ उत्तम मन वाला हो। अर्थात माता के मन को संतुष्ट करने वाला हो। पत्नी को चाहिए कि वह पति के साथ शान्तिप्रद वाणी बोले। इसके बाद मानव समाज को व्यवस्थित रखने के लिए तथा वर्ण व्यवस्था ठीक रखने के लिए वेद कहता है-

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। उरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत। यजु. 31-।।

इस पुरूष का मुख ब्राह्मण हो गया। इसके दोनो बाहु क्षत्रिय मान लिए गए। इसके पेट या जघाएँ वैश्य है और दोनों पैर शूद्र हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव समाज को उन्नत बनाने के लिए, मानव को आस्तिक बनाना, अनुशासित करना, अत्यंत आवश्यक कार्य है जो वेदों द्वारा किया जाता है। प्रत्येक पग-पग पर समाज को सुधारने के लिए वेद की अहम् भूमिका है। वेदों के कारण ही राम के समय अयोध्या का मानव समाज चरम सीमा पर था।

-आर्य समाज, दयानन्द मार्ग, श्री गंगानगर (राज.)

(पृष्ठ 09 का शेष)

बिकते हैं। कई भाषाओं में होते हैं। आश्चर्य इस बात का है कि सर्वत्र सृष्टिसंवत् एक ही प्रकार का है। भिन्नता का नाम नहीं। यही विद्वानों को सत्यता को स्वीकार करने के लिये विवश कर रहा है। यह कृत्रिम नहीं है। यथार्थ है। सत्य इतिहास है। यह इस बात को सिद्ध करता है कि सृष्टि की उत्पत्ति, मानव की उत्पत्ति, वेद की उत्पत्ति का काल एक ही है। 14 मन्वन्तर 15 सन्धिकाल एकसहस्रचतुर्युग का कल्प=ब्राह्मदिन होता है। यह इन प्रमाणों में से सिद्ध सत्य है। इसी के आधार पर महर्षि ने सृष्टिसंवत् का निश्चय किया है। महर्षि 'संकल्प ज्योतिषग्रन्थों में, तिथिपत्रों में, पञ्चाङ्ग पत्रों में पढ़ा जाने वाला या लिखा जाने वाला सृष्टिसंवत् सर्वत्र एक समान है। इसलिए यह सत्य है। इसमें कुछ भी विरोध नहीं है। इसको अन्यथा कोई नहीं कर सकता। ऐसा निश्चय किया। इसको सबको मानना चाहिए ये जो नहीं मानेगा उसकी बात सर्वथा अमान्य होगी। महर्षि ने जो प्रमाण प्रस्तुत किये उन सब पर विचार न करने के कारण महर्षि को 'सन्धिकाल को स्वीकार न करने वाले', घोषित किया। मनुस्मृति में सन्धिकाल न होना हेतु बतलाया। ये उनके विचार ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका के वेदोत्पत्ति विषय को सम्यक् प्रकार न जानने से ज्योतिष शास्त्र को न पढ़ने से बने हैं। आज तक कोई विद्वान् यह सिद्ध नहीं कर सका कि महर्षि सन्धिकाल को स्वीकार नहीं करते। महर्षि के लेख के अनुसार यदि कोई विद्वान् सिद्ध करके बतला सकते हो तो सिद्ध करके बतला देवें। मैं उस विद्वान् से जानना चाहूंगा कि महर्षि ने सन्धिकाल को किस प्रमाण के आधार पर निरस्त किया। आशा है महर्षि दयानन्द के भक्त सन्धिकाल निरस्त परक महर्षि के प्रमाणों को प्रस्तुत करने की कृपा करेंगे।

-आर्ष गुरुकुल,वडलूर, कामारेड्डी, आन्ध्र प्रदेश

(पृष्ठ 11 का शेष)

अर्थात् यदि सूर्य न हो तो सदा रात्रि रहे और तस्कर लोग संसार की लूट-मार किया करें। अथवा परमात्मा न हो तो संसार में वेदोपदेश के अभाव से धर्माऽधर्म का ज्ञान प्रवृत न हो और ऐसा होने पर सब, सब को लूटें खसोंटे और दुरवस्था हो जावे।

जिस प्रकार सात सूर्य की किरणें इस विराट् रूपी रथ में निहित है, इसी प्रकार सब को पवित्र करते हुए ये सम्पूर्ण कोटानुकोटि ब्रह्माण्ड उसी निराकार परमात्मा के आधार पर स्थित है, उसमें निवास करते हैं।

उषाकाल एवं सूर्योदय के सुन्दर वातावरण में सच्चे मन से सर्वशक्तिमान सच्चिदानन्द, सुखस्वरूप, दुःखहर्त्ता, अजन्मा, अनन्त, निराकार, अनादि, निर्विकार, न्यायकारी और सृष्टिकर्त्ता परमपिता परमात्मा की उपासना करने से सभी नर-नारी संसार के सब कष्टों से छूटकर सर्व सुखों को प्राप्त करते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रणीत संन्ध्या के मन्त्रों को प्रार्थना रूप में उपासना करने से तन-मन-कर्म सुन्दर होते है और प्रभु से मिलन का उत्तम साध न भी है। हे 'सूर्य' अन्तर्यामी होने से सबके प्रेरक। 'परमात्मन्'। आप संसार समुद्र से तिराने वाले और सब मुमुक्षुओं को देखने=साक्षात् करने योग्य एवं सूर्य-चन्द्रादि ज्योतियों के बनाने वाले हैं। सब प्रकाशमान जगत् को आप ही प्रकाशित करते हैं। जैसा कि मुण्डकोपनिषद् 2/10 और श्वेताश्वतरोनिषद् 6/14 में कहा है कि उसी के प्रकाश से सब चमकते हैं।

''शं नो भव चक्षसा शं नो अहना शं भानुना शं हिमा शं घृणेन। यथा शमध्वञ्छमसद्दुरोणे तत्सूर्य द्रविणन्धेहि चित्रम्।।''

-ऋग्वेद, मंडल-10, सूक्त-38, मन्त्र-10।।

''हे सर्वप्रेरक प्रभो! हे सूर्य! हे परमात्मा! तू सर्वशक्तिमान तेज द्वारा अपने ताप से युक्त तेजस्वी स्वरूप से हमें शान्ति प्रदान कर। दिन के समान बल से हमें शान्ति दे। तू शीतलस्वरूप से हमें शान्ति प्रदान कर। हे ज्ञानमय! तू हमें ऐसा ऐश्वर्य दे कि हमें जीवनमार्ग में शान्ति मिले और हमारे परिवार में भी शान्ति रहे।''

- 19 सी, सरत बोस रोड, कोलकाता-700020

(पृष्ठ 1 का शेष)

लिए स्वामी जी ने सामाजिक शैली में कुछ उदाहरण दिये हैं- 'जो अनित्य संसार और देहादि में नित्य अर्थात जो कार्य जगत देखा, सुना जाता है, सदा रहेगा, सदा से है और योगबल से यही देवों का शरीर सदा रहता है वैसी विपरीत बुद्धि होना अविद्या का प्रथम भाग है। अशुचि अर्थात् मलयम स्त्र्यादि के और मिथ्याभाषण, चोरी आदि अपवित्र में पवित्र बुद्धि दूसरा, अत्यन्त विषयसेवनरूप दुख में सुखबुद्धि आदि तीसरा अनात्मा में आत्मबुद्धि करना अविद्या का चौथा भागा है।' (सत्यार्थ प्रकाश, नवम समुल्लास, पृ. 166) अविद्या की उपासना का फल है-दृष्टि के रोकने वाले अन्धकार और अत्यन्त अज्ञान को प्राप्त होना। अन्यत्र (यजुर्वेद 40/12) स्वामी जी ने अविद्या का अर्थ यह भी किया है-'अविद्या अर्थात् ज्ञानादि गुणरहित कारणरूप परमेश्वर से भिन्न जड़ वस्तु की उपासना' (देखिए यजुर्वेद भाष्यम-चतुर्थो भागः, पृ. 317)। यजुर्वेद, 40/14 के अनुसार व्यक्ति/साधक अविद्या से मृत्यु को तर जाता है, मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है। सामान्य अध्येता को वेद का यह कथन असमंजस में डाल सकता है, किन्तु ऋषिवर दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य (40/12-14) का चिन्तन्-मनन् और स्वाध्याय करने पर इस असमंजस का स्वतः ही निराकरण हो जाता है। स्वामी जी ने स्पष्ट किया है कि जो वस्तु अविद्यारूप है, वह जानने योग्य है, उपकार देने योग्य है और जो चेतन ब्रह्म तथा विद्वान् का आत्मा है, वह उपासना के योग्य है। स्वामी जी अविद्या को 'कर्मोपासना' के रूप में स्वीकार करते हुए कहना चाहते हैं कि हम सृष्टि के समस्त पदार्थों का सम्यक ज्ञान प्राप्त कर उनका सदुपयोग करें, पर जड़ वस्तु के उपासक न बनें। उपासनीय तो केवल सर्वशक्तिमान चेतन ब्रह्म ही है। उसे जानने और पाने के लिए मुक्ति लाभ के संसार के सभी जड़ पदार्थों, शरीर, इन्द्रियों, मन, चित्त आदि का सम्यक् ज्ञान और साधन-रूप में इनका सम्यक् सदुपयोग अत्यावश्यक है। वैदिक कर्मों एवं सदाचारपूर्वक धर्माचारण के बिना तथा विद्या के वास्तविक स्वरूप को समझे बिना तो मुक्ति लाभ सम्भव नहीं।

विद्या के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए 'सत्यार्थ प्रकाश' के नवम समुल्लास में स्वामी जी ने लिखा है, 'अनित्य में अनित्य और नित्य में नित्य, अपवित्र में अपवित्र और पवित्र में पवित्र, दुःख में दुःख और सुख में सुख, अनात्मा में अनात्मा और आत्मा में आत्म का ज्ञान होना विद्या है। (पृ. 166) विद्या और अविद्या के अन्तर को एक वाक्य में स्पष्ट करते हुए स्वामी जी ने लिखा है कि जिससे पदार्थों का यथार्थ स्वरूप बोध होवे वह विद्या और जिससे तत्वस्वरूप न जान पड़े अन्य में अन्य बुद्धि होवे वह अविद्या कहलाती है।' (पृ. 166) चूंकि मुक्ति जीव को प्राप्त होती है तथा जीव और ब्रह्म में और भी बहुत अन्तर है, अतः स्वामीजी ने नवीन वेदान्तियों के जीव-ब्रह्म की एकता के सिद्धान्त् का सप्रमाण खण्डन किया है।

विद्या-अविद्या का विवेचन करते हुए स्वामी जी ने एक प्रकार से ज्ञान-कर्म-उपासना के सम्यक् समन्वय पर बल दिया है। पंचक्लेशों में सर्वप्रथम अविद्या का ही उल्लेख किया गया है। स्वामी जी के अनुसार, 'कर्म और उपासना अविद्या इसलिए है कि यह बाह्य अन्तर क्रिया विशेष है, ज्ञान विशेष नहीं। इसी मन्त्र से (यजुर्वेद, 40/12) में कहा गया है कि विना शुद्ध कर्म और परमेश्वर की उपासना के मृत्यु दुख से पार कोई नहीं होता। अर्थात् पवित्र कर्म, पवित्रोपासना और पवित्र ज्ञान ही से मुक्ति और अपवित्र मिथ्याभाषणादि कर्म पाषाणमूर्त्यादि की उपासना और मिथ्याज्ञान से बन्ध होता है।' (पृ. 166) स्पष्टतः मुमुक्ष को चाहिए कि वह अपने कर्म, ज्ञान और उपासना को पवित्र करे। स्थूल शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि अविद्या भौतिकता में अत्यधिक अनुरक्ति का नाम है और विद्या ब्रह्मज्ञान या आध्यात्मिक चेतना से सम्बद्ध है। अविद्या के उपासक अनित्य को नित्य, अशुद्ध को शुद्ध, दुःख को सुख और शरीर को आत्मरूप में स्वीकार करते हुए जड़-वस्तु की उपासना में लीन रहते हैं, किन्तु विद्या के उपासक ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर, अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानकर, सांसारिक वस्तुओं, इन्द्रियों, शरीरादि का सदुपयोग करते हुए विद्या के द्वारा अमरत्व को प्राप्त करते हैं।

-बी-3/79, जनकपुरी, नई दिल्ली-110058

(पृष्ठ 5 का शेष)

पाने की आशा रखता है। वे पुरुषार्थ हैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मनुष्य ही इन चारों पुरुषार्थों को अपने पुरुषार्थ से प्राप्त कर सकता है। अन्य जीव केवल दो पुरुषार्थ अर्थ और काम ही पा सकते हैं। धर्म और और मोक्ष उन्हें कभी नहीं प्राप्त हो सकते। कारण उनमें बुद्धि और नैमित्तिक ज्ञान की कमी और उनकी सिर्फ भोग योनि है। उन्हें किये हुए बुरे या अच्छे कर्मों का फल नहीं मिलता। धर्म बुद्धि का विषय है और मोक्ष शुभ कर्मों का फल है, इसलिए यह दोनों पुरुषार्थ मनुष्य ही प्राप्त कर सकता है।

मनुष्य की आत्मा सत्यासत्य को जानने वाला है: महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में लिखा है कि मनुष्य की आत्मा सत्यासत्य को जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य से झुक जाता है। मनुष्य जब कोई गलत काम करने को उद्यत होता है तब उसकी आत्मा में भय शंका व संकोच उत्पन्न हो जाता है और जब वह कोई अच्छा परोपकारी कार्य करने को उद्यत होता है तब उसको प्रसन्नता, सन्तोष व सुख की अनुभूति होती है और अच्छे काम करने के लिए प्रेरित करती है। यह आवाज अन्य प्राणियों में नहीं होती।

अफसोस इस बात का है कि आज का मनुष्य ईश्वर द्वारा किए उपकारों को भूलकर पशुओं से भी बदतर होता जा रहा है। पशुओं में इतनी हिंसा, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, लोभ, लालच, क्रूरता, क्रोध व अहंकार आदि अवगुण नहीं हैं जितने मनुष्य में आ गय हैं। मनुष्य अपनी बुद्धि और अधिकारों का इतना अधिक दुरुपयोग करने लगा है कि जो मनुष्य के लिए शर्म का विषय बन गया है। आज तो मनुष्य धर्म के नाम पर हिंसा करता है और अपने पवित्र पर्वो या देवी-देवताओं के नाम पर पशु हत्या करके अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करता है। जो धर्म, सत्य, अहिंसा, दया, करूणा, सहृदयता, सच्चाई, ईमानदारी, परोपकार आदि गुणों को अपने जीवन में धारण करने की शिक्षा देता है, वही धर्म आज अधर्म के कार्य, हिंसा, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष करना, लूट-पाट करना व आतंक फैलाना सिखाता है। आज तो स्थिाति यह हो गई है कि मनुष्य जंगली जानवरों से नहीं डरता बल्कि मनुष्य से डरता है। ईश्वर ऐसे मनुष्यों को सद्बुद्धि प्रदान करे ताकि वे धर्म क्या है, अधर्म क्या है, इस बात को समझे और वैदिक धर्म जिसे हम मानव धर्म भी कह सकते हैं, उस पर चलकर अपने जीवन को उत्तरोत्तर उन्नत करते हुए मोक्ष पाने का अधिकारी बने जिसके लिए ईश्वर ने उसे धरती पर भेजा है।

- 180, महात्मा गांधी रोड (दो तल्ला), कोलकाता

"Trust"
yourself
You can do this

टंकारा समाचार मई 2025

Delhi Postal R.No. DL (ND)-11/6037/2024-25-26

अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसेंस नं० U(C) 231/2024-26

Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06 on 1/2-05-2025

R.N.I. No 68339/98 प्रकाशन तिथि: 23.04.2025

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक–अजय सहगल द्वारा मयंक प्रिंटर्स, 2199/63, नाईवाला, करोल बाग, नई दिल्ली–5 दूरभाष : 41548503 से छपवाकर कार्यालय महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा, आर्य समाज (अनारकली), मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–1 दूरभाष : 23360059, 23362110 से प्रकाशित। संपादक : अजय